* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



श्रीप्रिया-प्रियतम-युगल



भाण्डीर-वनमें भगवती श्रीराधा एवं नन्दजीकी गोदमें बालक कृष्ण

महाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 1468, विशिष्ट संस्करण, सजिल्द—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹२८०, सामान्य संस्करण (**कोड 789**) मूल्य ₹२३०, गुजराती (**कोड 1286**) मूल्य ₹२२५, तेलुगु (**कोड 975**) मूल्य ₹२००, बँगला (**कोड 1937**) मूल्य ₹१६०, कन्नड़ (**कोड 1926**) मूल्य ₹२००, तमिल (**कोड 2043**) मूल्य ₹३००।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2020	**शिवमहापुराण**-मूलमात्रम्	२७५	1343	**हर हर महादेव** ,,	२५	1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद	३०
1985	**लिङ्गमहापुराण**-सटीक	२२०	1367	**श्रीसत्यनारायणव्रतकथा**	१५	2155	**द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग**	४०
1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**-सानुवाद	३५	563	**शिवमहिम्नःस्तोत्र**	५	2127	**शिव-आराधना**— पॉकेट साइज (बेड़िआ)	७
1899	**श्रावणमास-माहात्म्य** ,,	३५	228	**शिवचालीसा**-पॉकेट साइज	४			
1954	**शिव-स्मरण**	१०	1185	**शिवचालीसा**-लघु	२	586	**शिवोपासनाङ्क**	१५०
1156	**एकादश रुद्र (शिव)**-चित्रकथा	५०	1599	**श्रीशिवसहस्र...**नामावलि...	१०	635	**शिवाङ्क**	२००
0204	**ॐ नमः शिवाय** ,,	२५	230	**अमोघ शिवकवच**	४			

चैत्र नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस'के विभिन्न संस्करण

(६ अप्रैल शनिवारसे नवरात्रारम्भ होगा)

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	**श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि०सं०)	६५०	82	**श्रीरामचरितमानस**—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती भी]	१३०
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	५५०			
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	३३०	1318	,, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित (मझला भी)	३००
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, नेपाली, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	२६०	83	,, मूलपाठ,ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	१३०
			84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	८०
			85	,, मूल, गुटका [गुजराती भी]	५०
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार	२००	1544	,, मूल, गुटका (विशिष्ट संस्करण)	६०
2166	,, ग्रन्थाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	१५०	2151	**सचित्र रामरक्षास्तोत्रम्**—पुस्तकाकार (बेड़िआ)	१५
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	१५०		**सुन्दरकाण्ड सटीक, मूल पाठ कई आकार-प्रकारमें**	
1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार	३००			

नित्य पाठके लिये 'श्रीदुर्गासप्तशती'के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	**श्रीदुर्गासप्तशती**—मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ)	५०	866	**श्रीदुर्गासप्तशती**—केवल हिन्दी	२२
876	,, मूल, गुटका	१५	1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	५५
1346	,, सानुवाद, मोटा टाइप	४०	1774	**देवीस्तोत्ररत्नाकर**	४०
1281	,, सानुवाद (राजसंस्करण)	५५		**श्रीदुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरीचालीसा** कई आकार-प्रकारमें	
489	,, सजिल्द, गुजरातीमें भी	५०			
118	,, सानुवाद, सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी)	३५			

कई दिनोंसे अनुपलब्ध ग्रंथ—अब उपलब्ध

शिवाङ्क [ग्रन्थाकार] (कोड 635)—यह विशेषाङ्क शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवचित्र,पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्गदर्शन कराता है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र वर्णन उसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय है। मूल्य ₹२००

संतवाणी-अङ्क [ग्रन्थाकार] (कोड 667)—संत-महात्माओं और अध्यात्मचेता महापुरुषोंके लोककल्याणकारी उपदेश-उद्बोधनोंका यह बृहत् संग्रह प्रेरणाप्रद होनेसे नित्य पठनीय और सर्वथा संग्रहणीय है। मूल्य ₹२३०

प्र० ति० 20-01-2019
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57　　पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

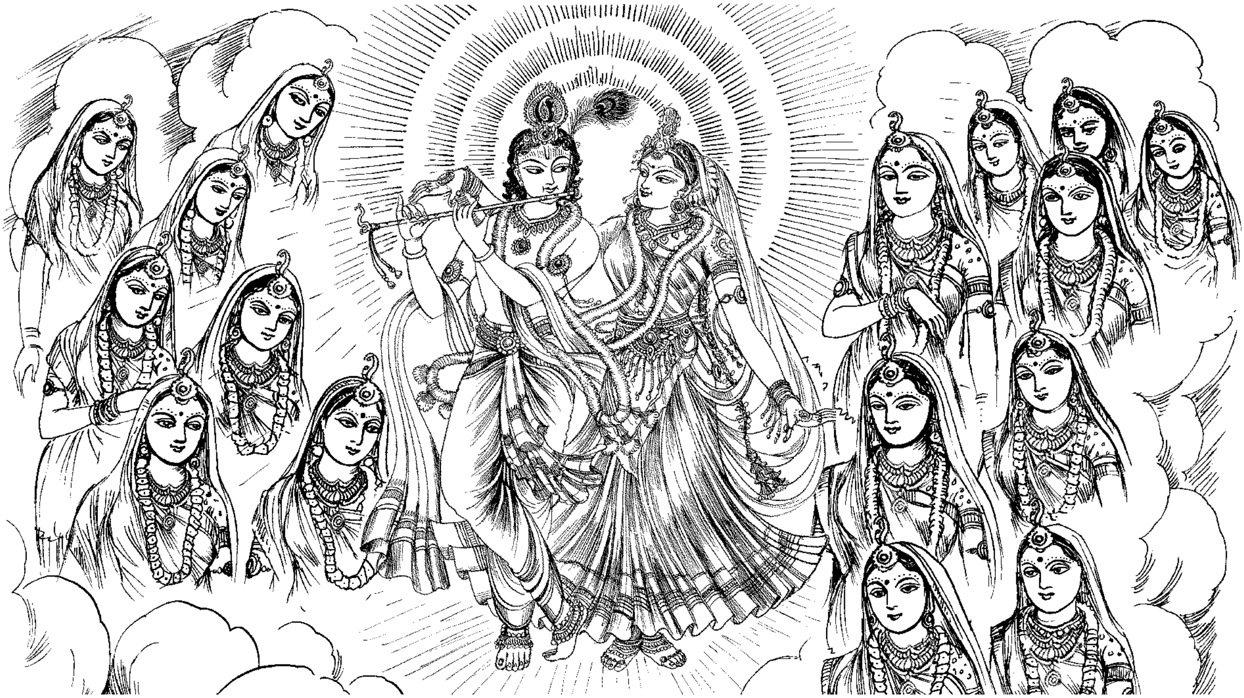
‘कल्याण’के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०१९ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०१९ ई० का विशेषाङ्क ‘**श्रीराधामाधव-अङ्क**’ वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, वे सदस्यता-शुल्क भेजकर रजिस्ट्रीसे पुन: मँगवा सकते हैं अथवा अनुरोध पत्र भेजकर वी०पी०पी० से भी पुन: मँगवा सकते हैं।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता, मोबाइल नम्बर तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिका विवरण हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें ‘कल्याण’ सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजन हेतु e-mail : **kalyan@gitapress.org. / 09235400242/244** पर सम्पर्क करना चाहिये। इसके अतिरिक्त ‘**कल्याण**’ के विषयमें किसी भी जानकारीके लिये **9648916010** पर SMS एवं WatsApp भी कर सकते हैं।

व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

वर्ष ९३ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, फरवरी २०१९ ई० | संख्या २

पूर्ण संख्या ११०७

भाण्डीर-वनमें नन्दजीद्वारा श्रीराधासे प्रार्थना

तत्तेजसा धर्षित आशु नन्दो नत्वाथ तामाह कृताञ्जलिः सन्।
अयं तु साक्षात्पुरुषोत्तमस्त्वं प्रियास्य मुख्यासि सदैव राधे॥
गुप्तं त्विदं गर्गमुखेन वेद्मि गृहाण राधे निजनाथमङ्कात्।
एनं गृहं प्रापय मेघभीतं वदामि चेत्थं प्रकृतेर्गुणाढ्यम्॥
नमामि तुभ्यं भुवि रक्ष मां त्वं यथेप्सितं सर्वजनैर्दुरापा।

श्रीराधाके दिव्य तेजसे अभिभूत हो नन्दने तत्काल उनके सामने मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा—'राधे! ये साक्षात् पुरुषोत्तम हैं और तुम इनकी मुख्य प्राणवल्लभा हो, यह गुप्त रहस्य मैं गर्गजीके मुखसे सुनकर जानता हूँ। राधे! अपने प्राणनाथको मेरे अङ्कसे ले लो। ये बादलोंकी गर्जनासे डर गये हैं। इन्होंने लीलावश यहाँ प्रकृतिके गुणोंको स्वीकार किया है। इसीलिये इनके विषयमें इस प्रकार भयभीत होनेकी बात कह रहा हूँ। देवि! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम इस भूतलपर मेरी यथेष्ट रक्षा करो। तुमने कृपा करके ही मुझे दर्शन दिया है, वास्तवमें तो तुम सब लोगोंके लिये दुर्लभ हो'। [गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड १६। ७—९]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, फरवरी २०१९ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail **शुल्क** — **वार्षिक** US$ 50 (₹3000), **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—जबतक मनमें विषय-सुखमें विश्वास, भरोसा तथा आशा है, तबतक भगवान्‌का यथार्थ भजन नहीं होगा। मनमें विषय-कामना रहेगी, लक्ष्य भोगपदार्थ रहेंगे, अतएव पद-पदपर फलानुसन्धान बना रहेगा। इससे वह भगवद्भजन न होकर भोग-भजन होगा। भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना या स्मृति-आराधना होगी तो वह भोग-प्राप्तिके साधनरूपमें ही होगी।

याद रखो—भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना या स्मृति-आराधनाका भोगप्राप्तिके साधनरूपमें किया जाना भी न तो पाप है, न त्याज्य है और न वह निष्फल ही होता है, सुतरां किसी भी रूपमें किसी भी हेतुसे भगवत्-स्मरण या भगवदाराधन करना सर्वथा कर्तव्य ही है तथा परम लाभप्रद भी है; तथापि असली भगवदाराधन या भगवद्भजन तो वही है जो भगवद्भजनके लिये ही होता हो और अपने-आप अविराम रूपसे होता हो।

याद रखो—'भजन करना' एक बात है और 'भजन होना' दूसरी बात है। श्वास हम करते नहीं श्वास आते हैं। श्वास लेनेके लिये अभ्यास नहीं करना पड़ता, न किसी शास्त्राज्ञा या सत्संगकी ही आवश्यकता होती है। श्वास सहज आते हैं, कभी रुक जाते हैं तो परम व्याकुलता होती है। इसी प्रकार श्वासकी भाँति 'भजन होना' चाहिये। क्षणभर भजन छूटनेपर परम व्याकुलता हो जाय, तभी असली भजन है।

याद रखो—सकाम भावसे भजन करना भी परम लाभप्रद है; परंतु सकाम भावसे भजन होना प्रायः सम्भव नहीं है। स्मृति रहती है काम्य वस्तुकी, खोज करता है मन निरन्तर काम्य वस्तुकी, चिन्ता रहती है काम्य वस्तुकी, तब भगवद्भजन किस मनसे होगा? यहाँतक देखा जाता है कि काम्य वस्तुके प्राप्त न होने या अनुकूल पदार्थके नष्ट हो जानेपर भगवद्भजन ही नहीं छूट जाता, भगवान्‌के अस्तित्वतकसे आस्था उठ जाती है या उठने लगती है। वह इसी कारण कि भजन भगवान्‌के लिये भगवान्‌का नहीं हो रहा था। भोगके लिये भगवान्‌के नामपर भोगका ही भजन हो रहा था।

याद रखो—भोगके लिये भजन करनेवाला इच्छित भोगके प्राप्त होनेपर भी भगवद्भजन नहीं करेगा; क्योंकि भोगवस्तुकी प्राप्तिसे भोगकामनाका नाश नहीं होता—जैसे अग्निमें घी-ईंधन डालनेपर अग्नि और भी प्रचण्ड हो जाती है और उसका दायरा बढ़ जाता है तथा उसके लिये और भी अधिक ईंधन-घीकी आवश्यकता हो जाती है, वैसे ही भोगकामनाकी पूर्तिसे भोगकामना और भी प्रचण्ड, और भी बृहत् तथा और भी तीव्र होगी। अतः पहले जो कुछ भगवद्भजन होता था, वह भी फिर नहीं होगा। भोगवस्तुके प्राप्त होनेपर जो सहज भोगक्रिया बढ़ेगी, वह भी भजनमें बाधक ही होगी।

याद रखो—विषय-सुखका विश्वास, विषय-सुखका भरोसा, विषय-सुखकी आशा भोगमय संसारसे सम्पर्क नहीं हटने देगी और भोगमय संसारका सम्पर्क निरन्तर विषयके विश्वास और भरोसेको बढ़ाता रहेगा। इस प्रकार परस्पर एक दूसरेको बढ़ाते हुए भोग-मय संसार और विषय-सुखमें आशा-भरोसा ही जीवनका स्वरूप बन जायगा, जो भयानक दुःखों, आसुरी योनियों और भीषण नरकोंकी प्राप्तिका कारण होगा। इसलिये ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मनमेंसे संसार निकल जाय और विषय-सुखसे निराशा हो जाय। **'नैराश्यं परमं सुखम्'** यही साधन है।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

'राधा! हम तुम दोउ अभिन्न'



एक दिन श्रीराधाजीके प्रेम तथा दैन्यसे सने वचनोंको सुनते ही श्रीश्यामसुन्दरके दोनों नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये। तब वे श्रीराधाजीसे इस प्रकार मधुर पवित्र वचन बोले—

राधा! हम तुम दोउ अभिन्न।
बारि-बीचि, चंद्रमा-चाँदनी सम अभिन्न नित भिन्न॥
नित्य सत्य सर्वदा सर्वथा रहूँ तुम्हारे संग।
आठौं पहर संग सँग डोलूँ, भर्‌यौ रहूँ अँग अंग॥
मो बिनु तुम्हरी कछू न सत्ता तुम बिनु मैं नाचीज।
समुझि न परत रहस्य रंच हू, को तरुवर, को बीज॥

राधिके! हम तुम दोनों अभिन्न हैं। जल-तरंग और चन्द्र-ज्योत्स्नाके समान नित्य भिन्न दीखते हुए भी अभिन्न हैं। मैं नित्य सत्यरूपसे ही सर्वदा सर्वथा तुम्हारे साथ रहता हूँ, आठों पहर ही तुम्हारे साथ-साथ फिरता हूँ, इतना ही नहीं, तुम्हारे अंग-अंगमें भरा रहता हूँ—समाया रहता हूँ। मेरे बिना तुम्हारी कुछ भी सत्ता नहीं है और तुम्हारे बिना मैं भी कोई वस्तु नहीं हूँ। यह रहस्य तनिक भी समझमें नहीं आता कि हम दोनोंमें कौन वृक्ष है और कौन बीज?

बिरह-मिलन दोउ रस हम दोउन के हैं लीला-साज।
एक नित्य रस बिबिध रूप धरि क्रीड़त सहित समाज॥
नित्य, एक ही नित अनेक सजि करत बिचित्र बिहार।
नित अनादि, आरंभ न कबहूँ, कबहुँ न उपसंहार॥
बिछुरन-मिलन तुम्हारौ मेरौ, नित्य मिलन के माँहि।
जा बिछुरनमें मिलन मनोहर, सो तो बिछुरन नाहिं॥

विरह (विप्रलम्भ) और मिलन (सम्भोग) दोनों ही रस हम दोनोंकी लीलाके ही उपकरण हैं। वस्तुत: एक ही नित्यरस विविध रूप धारण करके लीलासमाजके साथ क्रीड़ा कर रहा है। नित्य एक ही रसतत्त्व नित्य अनेक सजकर विचित्र विहार कर रहा है। यह नित्य विहार अनादि है, इसका न कभी आरम्भ है और न कभी उपसंहार। तुम्हारा और मेरा यह बिछुड़ना-मिलना नित्य मिलनके ही अन्तर्गत है। जिस बिछुड़नेमें मनोहर मिलन होता है, वह बिछुड़ना नहीं है।

मेरे रस तें तुम रसमयि, मैं तुम्हरे रस रसवान।
एक स्व-रस कौं द्विविध भेद तें करै नित्य हम पान॥
रस, रसपान, रसिक, रसदाता—एक परम रसरूप।
परमाश्चर्य, अचिंत्य अनिर्वचनीय अगम्य अनूप॥
कबहुँ न कतहुँ तुम्हारौ-मेरौ पलक बिछोह-बियोग।
नित्य सत्य अनिवार्य अलौकिक अविच्छेद्य संयोग॥
प्रिये! न तोहि स्वरूपकी विस्मृति नहीं कबहुँ कछु खेद।
एक परम रस सरिताके ही वे तरंगमय भेद॥

मेरे रससे तुम रसमयी हो और तुम्हारे रससे मैं रसवान् हूँ। (तुम्हारा-मेरा एक ही रस है) एक ही अपने ही रसको दो प्रकारके भेदोंसे हम दोनों नित्य पान करते हैं। यह रस, रसपान, रसिक, रसदाता—सब एक ही परम रसरूप हैं और वह परमाश्चर्यमय, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, अगम्य और अनुपम रस है। तुम्हारा और मेरा कभी कहीं पलभर भी बिछोह या वियोग नहीं है। हमारा यह नित्य, सत्य, अनिवार्य, अप्राकृतिक तथा अटूट संयोग है। प्रियतमे! न तो तुम्हें कभी स्वरूपकी विस्मृति है, न कभी कुछ खेद ही है। ये तो एक ही परम रस-सरिताके तरंगमय भेद हैं।

दोनों आप्यायित भये, मिले दिव्य रस-रीति।
महाभाव रसराज की अतुल अकल यह प्रीति॥

तदनन्तर दोनों ही (श्रीराधा-माधव) आप्यायित होकर दिव्य रसकी रीतिके अनुसार मिले। महाभाव (श्रीराधा) और रसराज (श्रीश्यामसुन्दर) की यह प्रीति अचिन्त्य और अतुलनीय है। [मधुर]

माधवका माधुर्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते॥
चलि चलि जात निकट स्त्रवननि के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ जाते॥

श्रीसूरदासजीके इस पदका अर्थ तीन प्रकारसे किया जा सकता है—एक तो यह कि मानो श्रीराधिकाजी भगवान् श्रीकृष्णके रूपको देख-देखकर उन्मत्त हो रही हैं, उस समय राधिकाजीके नेत्रोंकी क्या दशा है—उसका वर्णन सूरदासजी करते हैं।

दूसरा यह कि मानो श्रीकृष्णभगवान् श्रीराधिकाजीके रूपको देख रहे हैं, उस समयके उनके नेत्रोंकी शोभाका वर्णन है।

तीसरा यह कि सूरदासजी स्वयं भगवान्के दर्शन करते हुए अपने नेत्रोंकी वृत्तिका वर्णन करते हैं।

परंतु तीनोंमेंसे पहला अर्थ मानना ही अधिक अनुकूल प्रतीत होता है। वास्तवमें क्या बात है—यह तो भगवान् जानें। पूर्वापरके पद सामने रहें तो अनुमान करनेमें अधिक सहायता मिल सकती है।

पदका शब्दार्थ इस प्रकार किया जा सकता है—'अहो! श्रीराधिकाजीके नेत्ररूपी खंजन पक्षी भगवान् श्रीकृष्णके रूप-रसको पी-पीकर मतवाले हो रहे हैं; ये बड़े सुन्दर और चपल हैं, अत: पलकरूप पिंजरेमें नहीं समाते हैं। अर्थात् उस समय नेत्रोंकी पलकें पड़नी बन्द हो गयी हैं। ये इधर-उधर उछलते हुए मानो कानोंके पास जा रहे हैं। यदि इनके अंजनका पट लगा हुआ नहीं होता तो सम्भव है, ये अवश्य उड़ जाते। यानी श्रीकृष्णके स्वरूपमें जा मिलते।'

भगवान् श्यामसुन्दरकी मोहिनी छबिके आगे नेत्रोंकी पलक गिरती नहीं, बल्कि आँखें उनके स्वरूपका पान करती ही रहती हैं। भावकी बात है। विशुद्ध और उच्चकोटिकी श्रद्धा तथा प्रेम हो तो उपर्युक्त बातें घट सकती हैं। श्रीराधिकाजी भगवान्की उच्चकोटिकी प्रेमिका हैं। ये भगवान्की आह्लादिनी शक्ति हैं। भगवान्को हरदम प्रसन्न रखना ही इनका काम है। भगवान्का रासलीलामें जो नृत्य, गान, वंशीवादन आदि होता था, वह सब भी वैसे ही श्रीराधिकाजी एवं गोपियोंको सुख पहुँचानेके लिये, उनका प्रेम बढ़ानेके लिये ही होता था।

श्रीराधिकाजी एवं रासलीलाका विषय अत्यन्त रहस्यमय है। हमलोगोंकी साधारण बुद्धिके द्वारा इसका समझमें आना अत्यन्त कठिन है। भगवान्की दयासे तो मनुष्य भले ही समझ जाय, पर है यह बुद्धिकी समझसे परेकी बात। भगवान्की आह्लादिनी शक्ति होनेके कारण श्रीराधिकाजीको भगवान्का स्वरूप ही मानना चाहिये, उन्हें जीव नहीं मानना चाहिये। श्रीकृष्णकी रासलीला बिलकुल विशुद्ध है। इस रासलीलाके प्रति विशुद्ध प्रेमभाव हो तो भगवान्से शीघ्र प्रेम हो सकता है एवं कामभाव यदि कहीं छिपा हुआ हो तो वह भी भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे नष्ट हो सकता है।

अतएव भगवान्में विशुद्ध प्रेम करनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णकी मनमोहिनी मूर्तिको सब जगह देखते हुए काम करे। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिकी ओर देखती हुई पतिके इच्छानुसार सब काम करती है, उसी भाँति उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मोरमुकुटधारी, वंशीवटविहारीकी माधुरी मूर्तिको अपने नेत्रोंके सामने देखता हुआ काम करता रहे। जहाँ-जहाँ नेत्र जायँ वहाँ-वहाँ ही श्रीवासुदेव श्यामसुन्दरकी मूर्तिका चिन्तन करते हुए, मनको भगवान्में रखते हुए सांसारिक काम करता रहे। इससे साधन परिपक्व हो जाता है। उसे एक श्रीकृष्ण भगवान्के सिवा और कुछ नहीं भासता और वह आनन्दमें ऐसा मगन हो जाता है कि उसे आगे जाकर अपने शरीरका भी भान नहीं रहता। वह गोपियोंकी भाँति मुग्ध हो जाता है। भगवान् बड़े प्रेमी हैं। जो ऐसे भगवान्की मित्रता छोड़कर सांसारिक तुच्छ स्त्री और अपने शरीरका दास होकर उनमें प्रेम करता है, वही पशु है। जो भी कुछ सांसारिक वस्तुएँ देखनेमें आती हैं, सब नाशवान् हैं, ऐसा जानकर इनसे प्रेम छोड़कर सत्यस्वरूप भगवान्से ही प्रेम करना चाहिये। क्योंकि भगवान् तो केवल प्रेम ही चाहते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य श्रीविग्रह

(श्री जय जय बाबा)

भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् पूर्ण ब्रह्मके अवतार हैं या यों कहिये कि साक्षात् पूर्ण ब्रह्म ही श्रीकृष्ण-रूपमें प्रकट हुए हैं। उनके दिव्य गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य एवं आश्चर्यमयी अलौकिक उपदेशप्रद मधुर लीलाओंसे हमारे प्राचीन ग्रन्थ श्रीमद्भागवत, महाभारतादि भरे पड़े हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी इन्हीं मधुर लीलाओंके प्रसंगमें उद्धवजी विदुरजीसे कहते हैं—

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोग-
मायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः
परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्॥

(श्रीमद्भा० ३। २। १२)

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी योगमायाका प्रभाव दिखानेके लिये मानव-लीलाओंके योग्य जो दिव्य श्रीविग्रह प्रकट किया था, वह इतना सुन्दर था कि उसे देखकर सारा जगत् तो मोहित हो ही जाता था, वे स्वयं भी उसे देखकर विस्मित हो जाते थे। सौभाग्य और सौन्दर्यकी पराकाष्ठा थी इस रूपमें। उससे आभूषण (अंगोंके गहने) भी विभूषित हो गये।

अभिप्राय यह है कि भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहका सौन्दर्य इतना अलौकिक था कि उनके अंगोंके आभूषण मानो उनकी रूप-छटासे स्वयं ही अलंकृत हो रहे थे।

भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रह-जैसा सौन्दर्य आजतक किसी पांचभौतिक शरीरमें देखनेको नहीं मिला। तभी तो धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें जब भगवान्‌के उस नयनाभिराम रूपपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी थी, तब त्रिलोकीने यही माना था कि मानवसृष्टिकी रचनामें विधाताकी जितनी चतुराई है, सब इसी रूपमें पूरी हो गयी है[1]।

आज भी संसारमें जहाँ-जहाँ स्त्री-पुरुषोंका जो अनुपम सौन्दर्य देखनेको मिलता है, वह उस मोहनके अनन्त सौन्दर्य और माधुर्यकी एक छोटी-सी नगण्य झलक ही है। प्राकृतिक गुणोंद्वारा निर्मित शरीरोंका सौन्दर्य कुछ भी नहीं है; क्योंकि वह प्रतिक्षण बदलनेवाला और असत् है, फिर भी मोहके कारण लोग उनमें आसक्त हो रहे हैं।

भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह प्राकृतिक गुणोंद्वारा बनाया हुआ नहीं था। इसे तो उन्होंने अपने संकल्पमात्रसे अपने भक्तोंको प्रसन्न करनेके निमित्त प्रकट किया था। जैसा कि ब्रह्माजी भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण
साक्षात् तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। २)

स्वयंप्रकाश परमात्मन्! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनोंकी लालसा—अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है। यह आपकी चिन्मयी इच्छाका मूर्तिमान् स्वरूप मुझपर साक्षात् कृपाप्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करनेके लिये ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पंचभूतोंकी रचना है? प्रभो! यह तो अप्राकृतिक शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानन्द-विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता, फिर आत्मानन्दानुभवस्वरूप साक्षात् आपकी महिमाको कोई एकाग्र मनसे भी कैसे जान सकता है?

भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टिरचनाके अभिन्ननिमित्तो-पादान-कारण हैं। जैसे घड़ेका निर्माण करनेके लिये कुम्भकार निमित्तकारण है तथा जिस सामग्री [मिट्टी]-से घड़ा बनाया जाता है, वह उपादानकारण कहलाता है। परंतु भगवान् कृष्णके लिये सृष्टिनिर्माणहेतु उपर्युक्त

१-यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः। कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत॥ (श्रीमद्भा० ३। २। १३)

दोनों कारणोंकी आवश्यकता नहीं है। वे अपनी इच्छामात्रसे (अपने संकल्पमात्रसे) सृष्टिका निर्माण करनेमें समर्थ हैं। निम्न पंक्तियोंमें इसी तथ्यको स्पष्ट करनेका प्रयास किया गया है—

विधीयते यद् यदुनन्दनेन
नापेक्षते तत्र सहायशक्तिः।
पाञ्चालबालाञ्चलदीर्घताया
न तत्र तन्तुर्न च तन्तुवायः॥

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण जो भी रचना करना चाहते हैं, उसके लिये उनको किसी भी बाह्य सहायताकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि द्रौपदीका चीर बढ़ानेके लिये उनको न तो सूतकी आवश्यकता पड़ी और न ही सूत बुननेवाले जुलाहेकी। इतने बड़े विश्वब्रह्माण्डकी रचना जिन्होंने केवल अपने संकल्पमात्रसे कर डाली, उनको किसी भी उपादानकी क्या आवश्यकता हो सकती है, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। भागवतकार कहते हैं—

'न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये'

(श्रीमद्भा० ३।१३।४३)

अतः भगवान् श्रीकृष्णने जो ऐसा अनुपम सौन्दर्यवाला श्रीविग्रह स्वयं धारण कर लिया, इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या हो सकती है?

रुक्मिणीजीने भगवान् श्रीकृष्णको कभी नहीं देखा था, परंतु केवल उनके अद्भुत सौन्दर्यकी बात सुनकर ही अपने-आपको उनके समक्ष समर्पित कर दिया। भगवान्‌को भेजे हुए अपने सन्देशमें रुक्मिणीजी कहती हैं—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥

(श्रीमद्भा० १०।५२।३७)

'त्रिभुवनसुन्दर! आपके गुणोंको, जो सुननेवालोंके कानोंके रास्ते हृदयमें प्रवेश करके एक-एक अंगके ताप तथा जन्म-जन्मकी जलन बुझा देते हैं तथा अपने रूप-सौन्दर्यको, जो नेत्रवाले जीवोंके नेत्रोंके लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके फल एवं स्वार्थ-परमार्थ सब कुछ हैं, श्रवण करके प्यारे अच्युत! मेरा चित्त लज्जा, शर्म सब कुछ छोड़कर आपमें ही प्रवेश कर रहा है!'

रासक्रीडाके अवसरपर गोपियोंको यह अभिमान हो गया था कि हम संसारभरकी स्त्रियोंसे श्रेष्ठ हैं। गोपियोंके इस गर्वको मिटानेके लिये भगवान् कृष्ण रासमण्डलसे तत्काल अन्तर्धान हो गये[1]। उसके बाद गोपियोंके विलाप और करुणक्रन्दनको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपियोंके बीच ही आविर्भूत हो गये। उस समय उनका अनुपम सौन्दर्य बताते हुए शुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहते हैं—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

(श्रीमद्भा० १०।३२।२)

ठीक उसी समय उनके बीचोबीच भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुख-कमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिला हुआ था। गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालनेवाले कामदेवके मनको भी मथनेवाला था।

अतः हम भी उसकी अलौकिक रूप-माधुरीकी छवि-छटाको, जो अपने मोहक संगीत और कलित क्रीडाद्वारा सबके चित्तको आकर्षित करनेवाला है, मानवमात्रके चरम लक्ष्य परमपदको देनेवाला है, वैसे पूर्णेन्दुसुन्दरमुख और अरविन्द-जैसे नेत्रवालेको हमेशा-हमेशाके लिये अविस्मरणीय बना लें तथा अपने-आपको उसीमें अद्वैत एवं अभिन्न कर लें; यही तो उस अप्रतिम श्रीविग्रहके रूप-माधुर्यकी आध्यात्मिक परिणति है।

१-एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः। आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि॥
तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः। प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥ (श्रीमद्भा० १०।२९।४७-४८)

श्रीकृष्ण-लीलानुकरण हानिकारक

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार)

जो लोग श्रीकृष्णका स्वाँग सजकर गोपीभावसे स्त्रियोंसे पूजा कराते हैं, मेरी तुच्छ समझसे वे बड़ी भारी भूल करते हैं। यह सत्य है कि यह सारा जगत् परमात्माकी अभिव्यक्ति है, इसके निमित्तोपादान कारण परमात्मा ही होनेसे यह परमात्मस्वरूप ही है और इस दृष्टिसे देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग—सभीको परमात्माका स्वरूप समझना आवश्यक है; परंतु परमात्माका यह पूर्ण रूप नहीं है। यह तो अंशमात्र है। यद्यपि सब कुछ परमात्मा है, किंतु परमात्मा यह 'सब कुछ' ही नहीं है—परमात्मा इस 'सब कुछ' से परे अनन्त है और वह अनन्त परमात्मा श्रीकृष्णका ही स्वरूप है, इससे श्रीकृष्णसे ही सबमें व्याप्त हैं—यह ठीक ही है।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

(गीता ९। ४)

भगवान् श्रीकृष्णने कहा ही है—'मेरी अव्यक्त मूर्तिसे(परमात्मा विभुसे) सारा जगत् व्याप्त है।' परंतु यही (जगत् ही) श्रीकृष्ण नहीं है। अतएव श्रीकृष्णका स्वाँग रासलीलाके खेलमें चाहे आ सकता है; परंतु कोई मनुष्य वस्तुतः श्रीकृष्ण बनकर लोगोंसे अपनेको पुजवाये, यह तो बहुत ही अनुचित है और पूजनेवाले भी बड़ी भूल करते हैं। माना कि स्त्रियाँ श्रद्धालु हैं, भले घरोंकी हैं और शुद्ध भावसे ही ऐसा करती हैं; परंतु यह क्रिया वास्तवमें आदर्शके विरुद्ध और हानिकारक है। यह भी माना कि महात्मा निर्विकार हैं; परंतु उनका भी आदर्श तो बिगड़ता ही है और यदि वे साधक हैं तो इस निर्विकारताका बहुत दिनोंतक टिकना भगवान्की असीम कृपासे ही सम्भव है। ऐसी स्थितिमें जो लोग शुद्ध भावसे इस कार्यका प्रतिवाद करते हैं, वे न तो कोई दोष करते हैं और न अनुचित ही करते हैं। मेरी समझसे यदि उनका भाव द्वेषरहित और शुद्ध है तो वे पापके भागी नहीं होते।

श्रीकृष्ण मेरी समझसे महापुरुष या सिद्ध महात्मा ही नहीं हैं; वे साक्षात् परब्रह्म, पूर्णब्रह्म सनातन पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् हैं। उनका शरीर पांचभौतिक—मायिक नहीं है, वे नित्य सच्चिदानन्द-विग्रह हैं और गोपीजन भी दिव्यशरीरयुक्ता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्तिकी घनीभूत दिव्य मूर्तियाँ हैं। पद्मपुराणमें श्रीगोपीजनके सम्बन्धमें कहा गया है—

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा देवकन्यकाः।
..................राजेन्द्र न मानुष्यः कदाचन॥

'गोपियोंको श्रुतियाँ, ऋषियोंका अवतार, देवकन्या और गोपकन्या जानना चाहिये। वे मनुष्य कभी नहीं हैं।'

अखिलरससागर रसराजशिरोमणि जगत्पति श्रीभगवान्की प्रेयसी इन महाभाग्यवती दिव्यविग्रहधारिणी गोपियोंमें कुछ तो 'नित्यसिद्धा' हैं, जो अनादिकालसे भगवान् श्रीकृष्णके साथ दिव्य लीला-विलास करती हैं। कुछ पूर्वजन्ममें श्रुतियोंकी अधिष्ठात्री देवता हैं, जो 'श्रुतिपूर्वा' कहलाती हैं; कुछ दण्डकारण्यके सिद्ध ऋषि हैं, जो 'ऋषिपूर्वा' के नामसे ख्यात हैं और कुछ स्वर्गमें रहनेवाली देवकन्याएँ हैं, जो 'देवीपूर्वा' कहलाती हैं। पिछले तीनों वर्गोंकी गोपिकाएँ 'साधनसिद्धा' हैं। नित्य-सिद्धा गोपीजनोंमें श्रीराधाजी मुख्य हैं और चन्द्रावलीजी, ललिताजी, विशाखाजी आदि उन्हींकी कायव्यूहरूपा हैं; ये 'गोपकन्या' कहलाती हैं। साधनसिद्धा गोपियाँ पूर्वजन्ममें श्रीकृष्ण-सेवा-लालसासे साधनसम्पन्न होकर इस जन्ममें गोपीगृहोंमें अवतीर्ण हुई थीं और नित्यसिद्धा गोपीजनोंके सत्संग, सहयोग और सेवनसे दिव्यरूपताको पाकर इन्होंने श्रीकृष्णका दिव्य चरण-सेवाधिकार प्राप्त किया था। न तो ये गोपियाँ परस्त्रियाँ थीं और न अखिल विश्वब्रह्माण्डके स्वामी, आत्माओंके आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण ही परपुरुष या उपपति थे। प्रेम-रसास्वादनके लिये—प्रेममार्गके साधनकी अत्युच्च भूमिकाके शिखरपर महात्माओंको भगवत्कृपासे जो सिद्धिरूपा चरमानुभूति होती है, उसी अतुलनीय दिव्य प्रेमका वितरण करनेके लिये 'जगत्पति' ने 'उपपति' का और उनकी नित्यसंगिनी

नित्यकान्तास्वरूपा शक्तियोंने 'परस्त्री' का साज सजा था। यह रास—यह गोपी-गोपीनाथका मिलन हमारे मलिन मिलनकी तरह गंदे कामराज्यकी वस्तु नहीं है, पांचभौतिक देहोंके गंदे काम-विकारका परिणाम नहीं है। यह तो परम अद्भुत, परम विलक्षण—जिसकी एक झाँकीके लिये बड़े-बड़े आत्मज्ञानी कैवल्य-प्राप्त महापुरुषगण तरसते रहते हैं—दिव्य लीला है। इसका अनुकरण कोई भी मनुष्य कदापि नहीं कर सकता, चाहे वह कितनी ही ऊँची स्थितिमें हो। इस लीलाका अनुकरण करने जाकर जो पर-स्त्री और पर-पुरुष परस्पर प्रेमका सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं, वे तो घोर नरक-यन्त्रणाकी तैयारी करते हैं। सचमुच उनमें सच्चा प्रेम है ही नहीं। वे तो तुच्छ कामके गुलाम हैं और प्रेमके नामको कलंकित करते हैं। सच्चा प्रेम तो एक श्रीभगवान्से ही होता है। प्रेममें प्रेमके सिवा और कोई कामना-वासना रहती ही नहीं। जगत्में परोपकारतकके कार्योंमें आत्मतृप्तिकी एक वासना रहती है। जगत्का कोई भी जीव आत्मेन्द्रिय-तृप्तिकी इच्छाके बिना—चाहे वह अत्यन्त ही क्षीण हो—किसीसे प्रेम नहीं करता और जिसमें आत्मेन्द्रिय-तृप्तिकी वासना है, वह प्रेम प्रेम नहीं है। आत्मेन्द्रिय-तृप्तिकी इच्छासे रहित एकनिष्ठ प्रेम तो आत्माओंके आत्मा, हमारे आत्माके भी आत्मा श्रीकृष्णके प्रति ही हो सकता है। जो पर-स्त्री और पर-पुरुष इन्द्रियतृप्तिकी इच्छासे—चाहे वह बहुत सूक्ष्म वासनाके रूपमें ही हो—प्रेमका स्वाँग सजते हैं, वे वस्तुतः अपना महान् अनिष्ट करते हैं। वासनाको बढ़कर प्रबल रूप धारण करते देर नहीं लगती। आगमें ईंधन डालनेसे जैसे आग बढ़ती है, वैसे ही भोग्य वस्तुकी प्राप्तिसे भोगतृष्णा बढ़ती है और उसके परिणाममें इस लोक और परलोकमें प्राप्त होते हैं—निन्दा, भय, क्लेश, कष्ट और अनन्त नरक-यन्त्रणा!

शास्त्र कहते हैं—

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियं पुरुषः अगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिंगयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या।

अर्थात् 'कोई पुरुष यदि अगम्या स्त्रीमें गमन करता है अथवा कोई स्त्री अगम्य पुरुषसे गमन करती है (अगम्य वही है, जिससे विवाह न हुआ हो) तो उनके मरनेपर यमदूत उनको मारते हुए ले जाते हैं और वहाँ जलती हुई लोहेकी स्त्रीमूर्तिसे पुरुषका और पुरुषमूर्तिसे स्त्रीका आलिंगन कराते हैं। इस नरकका नाम 'तप्तसूर्मि' है।'

इसके बाद जब स्थूलदेहमें जन्म होता है, तब उन्हें कई जन्मोंतक नाना प्रकारके भयानक रोगोंसे पीड़ित रहना पड़ता है।

अतएव इस मायिक जगत्में श्रीकृष्णकी और गोपियोंकी दिव्य लीलाका अनुकरण कदापि नहीं हो सकता, न ऐसा दुस्साहस किसीको कभी करना ही चाहिये।

हाँ, जिनके अन्तःकरण परम विशुद्ध हो गये हैं, इस लोक और परलोकके भोगोंकी सारी वासना जिनके मनसे मिट चुकी है, जो मुक्तिका भी तिरस्कार कर सकते हैं, ऐसे पुरुषोंमें यदि किन्हीं महापुरुषकी कृपासे श्रीकृष्णसेवाकी लालसा जग उठे और भुक्ति-मुक्तिकी सूक्ष्म वासनातकका सर्वथा अभाव होकर उन्हें शुद्ध प्रेमा-भक्ति प्राप्त हो, तब सम्भव है गोपियोंकी भाँति श्रीकृष्ण उन्हें उपपतिके रूपमें प्राप्त हो सकें। अतएव यदि गोपियोंको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करना हो तो वह परम पुरुष श्रीकृष्णके लिये करना चाहिये, न कि हाड़-मांसके घृणित पुतले पर-पुरुष या पर-स्त्रीके लिये।

शरीरसे तो अनुकरण कोई भी नहीं कर सकते। परंतु भावसे भी, जिनमें तनिक भी निजेन्द्रिय-तृप्तिकी वासना है, जो पवित्र और परम वैराग्यकी स्वच्छ भूमिकापर नहीं पहुँच गये हैं, वे पुरुष या स्त्री यदि श्रीगोपी-गोपीनाथकी लीलाओंका अनुकरण करना चाहेंगे तो उनकी वही दशा होगी, जो सुन्दर फूलोंके हारके भरोसे अत्यन्त विषधर नागको गलेमें पहननेवालोंकी होती है। पांचभौतिक देहधारी स्त्री-पुरुषको तो श्रीकृष्णकी लीलाकी तुलना अपने कार्योंसे करनी ही नहीं चाहिये।

गोपी-प्रेमका वैशिष्ट्य

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

एक भाई गोपी-प्रेमकी बात पूछ रहा था। इसलिये कहना है कि जबतक प्राणीका शरीर और संसारसे सम्बन्ध नहीं छूटता, जबतक वह शरीरको मैं और संसारको अपना मानता है, तबतक गोपी-प्रेमकी बात समझमें नहीं आती। प्रेमीमें चाह नहीं रहती इसलिये प्रेमी अपने लिये कुछ नहीं करता, जो कुछ करता है वह अपने प्रियतमको रस देनेके लिये ही करता है। यहाँ तर्कशील मनुष्य यह प्रश्न कर सकता है कि भगवान् तो सब प्रकारसे पूर्ण और रसमय आनन्दस्वरूप हैं। उनमें किसी प्रकारका अभाव ही नहीं है। उनको रस देनेकी बात कैसी? उसको समझना चाहिये कि यही तो प्रेमकी महिमा है, जो आप्तकाममें भी कामना उत्पन्न कर देता है, सर्वथा पूर्णमें भी अभावका अनुभव करा देता है। प्रेमियोंका भगवान् सर्वथा निर्विशेष नहीं होता। उनका भगवान् तो अनन्त दिव्य गुणोंसे सम्पन्न होता है और उनका अपना प्रियतम होता है। उनकी दृष्टिमें भगवान्के ऐश्वर्यका भी महत्त्व नहीं है। उनका भगवान् तो एकमात्र प्रेममय और प्रेमका ग्राहक है।

प्रेमी भगवान्को रस देनेके लिये ही अपना जीवन सुन्दर बनाते हैं, जैसे सुन्दर पुष्पको खिला हुआ देखकर वाटिकाका स्वामी उस फूलसे प्रेम करता है, उसको हाथमें लेता है, सूँघता है, उसकी शोभाको देखकर प्रसन्न होता है; वैसे ही भगवान् भी अपने प्रेमीको चाहरहित सुन्दर जीवन्मुक्त देखकर प्रसन्न होते हैं, उनको उससे रस मिलता है।

पुष्प तो जड होता है, इस कारण स्वयं मालीसे प्रेम नहीं करता। जैसे धनसे मनुष्य प्रेम करता है, परंतु धन जड होनेके कारण मनुष्यसे प्रेम नहीं करता। जीव जड नहीं है, चेतन है; इसलिये यह भी अपने प्रियतमसे प्रेम करता है अर्थात् भक्त भगवान्से प्रेम करता है और भगवान् भक्तसे प्रेम करते हैं। भगवान् भक्तके प्रियतम और भक्त भगवान्का प्रियतम हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण और किशोरीजीकी प्रेमलीलासे यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है। उनकी लीला अपने भक्तोंको प्रेमका तत्त्व समझाने और रस प्रदान करनेके लिये ही हुआ करती है। एक समय श्यामसुन्दरके मनमें किशोरीजीको प्रेमरस प्रदान करनेके लिये उनकी परीक्षाकी लीला करनेका संकल्प हुआ, तो आपने एक देवांगनाका रूप धारण किया और किशोरीजीके पास गये। बातचीतके प्रसंगमें श्यामसुन्दरने कहा—'किशोरीजी! आप श्याम-सुन्दरसे इतना प्रेम क्यों करती हैं? वे तो आपसे प्रेम नहीं करते।' तब किशोरीजीने कहा—'तुम इस बातको क्या समझो! प्रेम करना तो श्यामसुन्दर ही जानते हैं। वे ही प्रेम करते हैं। मुझमें प्रेम कहाँ है?' देवांगना बोली—'नहीं-नहीं, वे तो प्रेम नहीं करते, तुम्हीं प्रेम करती हो।' तब किशोरीजीने कहा—'देवी! प्रेम करना जैसा श्यामसुन्दर जानते हैं, वे जितना और जैसा प्रेम करते हैं, वैसा कोई नहीं कर सकता।' तब देवांगना बोली—'मैं तो यह नहीं मान सकती।' किशोरीजीने कहा—'तुमको कैसे विश्वास हो?' देवांगना बोली—'यदि वे आपके बुलानेसे आ जायँ तो मैं समझूँ कि सचमुच वे भी आपसे प्रेम करते हैं।' किशोरीजीने कहा—'यह तो तब हो सकता है जबकि कुछ समयतक तुम मेरी सखी बनकर यहाँ रहो।' देवांगनाने किशोरीजीकी बात स्वीकार की और उनकी सखी बनकर रहने लगी। तब किशोरीजीने भावमें प्रविष्ट होकर भगवान्से कहा—'प्यारे! तुम कहाँ हो?' इतना कहते ही देवांगनासे भगवान् श्यामसुन्दर हो गये। उनको देखकर किशोरीजीने कहा—'ललिते! वह देवांगना कहाँ है? उसे बुलाकर प्यारेका दर्शन कराओ।' तब ललिता बोली—'प्यारी! उसीमेंसे यह देव प्रकट हुए हैं, वह अब कहाँ है।' ललिता विवेक-शक्तिका अवतार है, यह भक्त और भगवान्को मिलाती रहती है। इस लीलासे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भक्त भगवान्से प्रेम करता है और भगवान् भक्तसे प्रेम करते हैं।

रहस्यमयी वार्तामें श्रीराधामाधव

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रश्न—भगवान् श्रीकृष्ण मोर-मुकुट धारण क्यों करते हैं?

उत्तर—मोर श्रीजीको बहुत प्रिय था और उनका केलीमृग (खेलनेका पशु) था। श्रीजीके प्रेमके कारण भगवान्ने मोरपंख धारण किया।

प्रश्न—भगवान्ने गोपियोंसे कहा कि मैं तुम्हारा ऋण जन्मभर उतार नहीं सकता, तो भगवान्पर गोपियोंका क्या ऋण था?

उत्तर—गोपियोंने अपने-आपको भगवान्को समर्पित कर दिया था। भगवान्की तो कई गोपियाँ थीं, पर गोपियोंके एक भगवान् ही थे।

प्रश्न—भगवान् प्रेमके लिये स्त्री (राधा) और पुरुष (कृष्ण)-रूपसे क्यों हुए?

उत्तर—संसारमें स्त्री और पुरुषके बीच विशेष आकर्षण होता है, इसलिये संसारी लोगोंको समझानेके लिये भगवान्ने स्त्री-पुरुषरूप धारण किया। जैसे प्रेममें 'परकीया' की बात परकीयाका भाव लेनेके लिये कही गयी है, ऐसे ही स्त्री-पुरुषका रूप भी स्त्री-पुरुषका भाव लेनेके लिये धारण किया गया है।

प्रश्न—मुक्त होनेके बाद जो प्रेम होता है, उसमें प्रेमी तथा प्रेमास्पद दोनों बराबर होते हैं; अत: वहाँ माधुर्यभाव होता है। फिर वहाँ दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भाव कैसे होंगे?

उत्तर—माधुर्यभावमें सभी भाव आ जाते हैं; जैसे—स्त्रीमें सभी भाव होते हैं, पत्नी माताका कार्य भी करती है और दासीका काम भी।

सख्य आदि सभी भाव प्रतिक्षण वर्धमान प्रेममें ही होते हैं। मुक्तिसे पहले भी ये भाव हो सकते हैं, पर वे दूसरी सत्ताको लेकर होते हैं। मुक्तिके बाद एक सत्ता रहती है। दोनों ही प्रेमी और दोनों ही प्रेमास्पद होते हैं। सभी भाव दोनों तरफ होते हैं। अत: कभी कृष्ण राधा बन जाते हैं, कभी राधा कृष्ण बन जाती हैं। कभी राधा सेवक बन जाती हैं, कभी कृष्ण सेवक बन जाते हैं—

'देख्यों दुर्‌यौ वह कुंज-कुटीरमें बैठ्यो पलोटत राधिका-पायन।'

प्रश्न—रासलीला क्या है?

उत्तर—रास है—रसका समूह, रसबाहुल्य अर्थात् प्रतिक्षण वर्धमान रस। सांसारिक सुखका तो ह्रास होता है और अपना पतन तथा भोग्य वस्तुका नाश होता है, पर प्रेममें ऐसा नहीं है। प्रेममें ह्रास अथवा नाश नहीं होता, प्रत्युत वृद्धि होती है। उस वृद्धिका नाम 'रास' है। प्यास बुझती नहीं, पेट भरता नहीं, जल घटता नहीं।

प्रश्न—रासलीलाकी रात्रिको 'ब्रह्मरात्रि' क्यों कहा है?—'**ब्रह्मरात्र उपावृत्ते०**' (श्रीमद्भा० १०। ३३। ३९)

स्वामीजी—परमात्मस्वरूप होनेसे ही उसको 'ब्रह्मरात्रि' कहा है। वैष्णवलोग भगवान्के सम्बन्धको 'ब्रह्मसम्बन्ध' और भगवान्के उत्सवको 'ब्रह्मोत्सव' कहते हैं।

रामजीके जन्मके समय छः महीनेका दिन रहा था; क्योंकि सूर्य कहीं रुक गया। ऐसे ही रासलीलाके समय छः महीनेकी रात रही थी।

प्रश्न—गीताप्रेससे प्रकाशित एक स्तोत्र है—'भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा दिव्यप्रेमकी प्राप्तिके लिये।' आपसे सुना है कि प्रेमकी प्राप्ति भगवान्में अपनापन होनेसे होती है, किसी साधन, तपस्या आदिसे नहीं, फिर उपर्युक्त स्तोत्रका पाठ करनेसे प्रेमकी प्राप्ति कैसे?

उत्तर—जिस संकल्पसे स्तोत्र लिखा गया है, उसीके अनुसार प्रभाव होता है। जिस उद्देश्यसे कार्य किया जाता है, उसीकी सिद्धि होती है। जैसे—मन्त्र पढ़नेसे बिच्छूका जहर उतर जाता है; क्योंकि जहर उतारनेके उद्देश्य (संकल्प)-से ही उस मन्त्रकी रचना की गयी। ऐसे ही यह स्तोत्र प्रेम-प्राप्तिके उद्देश्यसे बनाया गया है। अत: स्तोत्रका पाठ करनेसे भगवान्में अपनापन होकर प्रेम हो सकता है।

प्रश्न—प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम क्या है?

उत्तर—राधा और कृष्ण कभी एक हो जाते हैं अर्थात् राधा कृष्ण और कृष्ण राधा बन जाते हैं, तब वियोग होता है—'***स्याम स्याम रटत राधा स्याम ही भई री, पूछत सखियन सों प्यारी कहाँ गई री।***' परंतु जब राधाजीको भान होता है कि 'मैं राधा हूँ, वे कृष्ण हैं', तब मिलन होता है। इस प्रकार प्रेममें वियोग तथा मिलन—दोनों होनेसे प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है।

प्रेममें एकसे दो और दोसे एक होता रहेगा, तभी वह प्रतिक्षण वर्धमान होगा। जब प्रेमी अपनी तरफ देखता है, तब 'भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान्का हूँ' और जब भगवान्की तरफ देखता है, तब 'एक भगवान्के सिवाय कुछ नहीं है,—'**वासुदेवः सर्वम्।**' इससे प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है। यदि एकमें ही स्थिर रहे तो 'ज्ञानयोग' हो जायगा।

प्रेममें मिलना और अलग होना भगवान्की इच्छासे होता है, भक्तकी इच्छासे नहीं। इसमें ज्ञानाद्वैत अथवा स्वरूपाद्वैत नहीं होता, प्रत्युत प्रेमाद्वैत होता है।

प्रश्न—गोपियोंमें कामनायुक्त भक्ति थी, फिर उन्हें सर्वश्रेष्ठ क्यों कहा गया?

उत्तर—गोपियोंमें भगवान्पर निर्भरता विशेष थी। उन्होंने भगवान्के प्रेमके आगे कुछ भी स्वीकार नहीं किया—'**या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा**' (श्रीमद्भा० १०। ४७। ६१)।

प्रश्न—गोपियोंकी तरह '**दयित दृश्यताम्**' (श्रीमद्भागवत १०। ३१। १) 'हे प्यारे! दीख जाओ'—यह लगन हर समय नहीं रहती!

उत्तर—कोई बात नहीं! घबराओ मत! गरमीके मौसममें कभी गरमी कम पड़ती है, कभी अधिक, उससे क्या घबराना!

प्रश्न—भागवतमें गोपियोंको '**वनचरीर्व्यभिचार-दुष्टाः**' कहा है (श्रीमद्भा० १०। ४७। ५१)। इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर—गोपियाँ पतिके सिवाय दूसरेको चाहती हैं—ऐसा स्थूलदृष्टिसे देखनेपर उनको '**व्यभिचारदुष्टाः**' कहा है। वास्तवमें वे व्यभिचारदुष्टा हैं नहीं; क्योंकि वे भगवान्को चाहती हैं, और भगवान् सबके परमपति हैं। उनके सामने भगवान् होनेसे काम होते हुए भी काम नहीं रहा, अपनी सुखबुद्धि नहीं रही! वृत्तिके भगवान्की तरफ जाते ही काम-वृत्ति नहीं रहती! इसलिये अच्छे-अच्छे महात्मा भी गोपियोंका आदर करते हैं—'**यथा व्रजगोपिकानाम्**' (नारदभक्ति० २१)!

भगवान्में काम नहीं है, अगर हो तो फिर कामको कौन जीत सकेगा? अतः भगवद्विषय होनेसे, भगवान्के प्रति होनेसे व्यभिचार भी शुद्ध, भगवत्स्वरूप हो जाता है और संसार लुप्त हो जाता है—

कामाद् द्वेषाद् भयात् स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः॥

(श्रीमद्भा० ७। १। २९)

'एक नहीं, अनेक मनुष्य कामसे, द्वेषसे, भयसे और स्नेहसे अपने मनको भगवान्में लगाकर तथा अपने सारे पाप धोकर वैसे ही भगवान्को प्राप्त हुए हैं, जैसे भक्त भक्तिसे।'

अग्निमें पड़कर सब वस्तुएँ अग्निरूप ही हो जाती हैं। अतः किसी भी भावसे भगवान्में वृत्ति लगायी जाय, वह वृत्ति शुद्ध हो जायगी। अतः गोपियोंका भगवान्में जारभाव था, पर 'उनके सिवाय दूसरा कोई नहीं है'—इसमें वह जारभाव समाप्त हो गया!

प्रश्न—लौकिक और दिव्य वृन्दावनमें क्या अन्तर है?

उत्तर—लौकिक वृन्दावन इस लोकमें हमारे प्रत्यक्ष है, पर दिव्य वृन्दावन अप्रत्यक्ष है। इस लौकिक वृन्दावनमें दिव्य वृन्दावनके दर्शन हो सकते हैं। जैसे—सब कुछ भगवान् हैं, पर दीखते कहाँ हैं? संसार ही दीखता है। सूर्य एक जगह भी है और किरणरूपसे सब जगह भी है। ऐसे ही दिव्य वृन्दावन एक जगह भी है और सर्वत्र भी। भक्तोंके हृदयमें भी दिव्य वृन्दावन प्रकट हो जाता है! [**संक०—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन**]

शुद्धि और शृंगार

(साधुवेषमें एक पथिक)

ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसे अपने-आपको शुद्ध रखना और अपना शृंगार करना प्रिय न हो। अपने मैले कपड़े और अपना मैला शरीर सब शुद्ध करते हैं और उन्हीं उजले शुद्ध वस्त्रोंसे शुद्ध देहको सजाते हैं। इतना भेद अवश्य रहता है कि कुछ लोग अपने-आपको ही सन्तुष्ट और तृप्त करनेके लिये अपना शरीर शुद्ध रखते हुए उसका शृंगार करते हैं और कुछ लोग अपने स्नेहपात्रको सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रखनेके लिये ही शुद्धिके साथ शृंगारका सदुपयोग समझते हैं।

शुद्धिका अर्थ है—अशुद्ध वस्तुओंका त्याग करना, जो शुद्ध रूपके साथ मिल जाती हैं। विशेषरूपमें शरीरके प्रत्येक अंगको जल-मृत्तिकाद्वारा साफ रखना तो शुद्धि है ही, पर इसके साथ-साथ पंच ज्ञानेन्द्रियोंकी, मन और बुद्धि तथा अहंकी शुद्धि भी अमित आवश्यक है। नेत्रोंसे सदा पवित्र, सुन्दर और सत्त्वगुणी रूपोंको देखना, कानोंसे भगवत्कथा-प्रसंग और सन्तों तथा गुरुजनोंसे ज्ञान-भक्तिकी कल्याणकारी चर्चा सुनना, रसनासे भगवान्‌की चरित्र-कथा तथा उनके परम पावन नामोंका कीर्तन करना, त्वचासे सदा सद्भाववर्धक पवित्र स्पर्शकी ही अभिलाषा करना—इन्द्रियोंकी शुद्धि है। मनसे विरक्त, ज्ञानी, महात्मा और परमाधार परमात्माको ही अपना मानकर उन्हींका मनन करना मनकी शुद्धि है। इसी प्रकार चित्तसे भगवान्‌के गुण, ज्ञान और चरित्रका चिन्तन करना चित्तकी शुद्धि है। बुद्धिसे जगत्-प्रपंचकी असारता—असत्यताका अनुभव करते हुए महापुरुषके ज्ञानस्वरूपको जानना और भगवान्—परमानन्द परमात्माका ज्ञान प्राप्त करना बुद्धिकी शुद्धि है। अहंताके साथ विनाशी देह आदि पदार्थोंका जो संगाभिमान मिल गया है, उसे छोड़कर अविनाशी परमानन्द परमात्मासे अपने-आपको अभिन्न देखना—परम तत्त्वके साथ एकताका अभिमान दृढ़ करना अहंकी शुद्धि है।

जिस प्रकार सौन्दर्यप्रेमी सज्जन शरीरको शुद्धकर उसका वस्त्राभूषणसे शृंगार करते हैं, उसी प्रकार अन्तरंग जीवनको भी सद्‌गुणों, सद्भावों और सत्-ज्ञान तथा सदात्माभिमानसे सजाया जाता है। बाह्य शरीरकी शुद्धि तथा शृंगार-सौन्दर्यपर स्थूल दृष्टिवाले रीझते हैं—महत्त्व देते हैं और अन्तःकरणकी शुद्धि तथा शृंगार—सुन्दरतासे प्रेममय भगवान् रीझ जाते हैं। बाह्य सौन्दर्यसे संसारी व्यक्तियोंको रिझाकर परतन्त्र-भोगी बनना पड़ता है; अन्तःकरणकी शुद्धि तथा सद्‌गुण और सत्-ज्ञानके सौन्दर्यसे भगवान्‌को रिझानेपर नित्य, स्वतन्त्र और परमानन्द सत्यका योग मिलता है। सांसारिक वस्तुओंको लेकर अभिमान, मोह, ममता, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि दोष-दुर्विकारोंका त्याग ही अन्तःकरण—अन्तर्जीवनकी शुद्धि है और इसी प्रकार अपने अन्तःकरण—अन्तर्जीवनमें श्रद्धा, विवेक, संतोष, उदारता, विनम्रता, क्षमा, सहिष्णुता, अटूट प्रसन्नता आदि धारण करना ही सुन्दर शृंगार है।

प्रायः देहको साफ कर लेना तो पशु-पक्षी भी जानते हैं। देहका सुन्दर शृंगार तो वेश्याएँ भी कर लेती हैं और दर्पणमें मुख देखकर सुन्दरताका गर्व करती हैं। अपने अन्तरंग जीवन—ज्ञानेन्द्रियों, मन, चित्त, बुद्धि और अहंकारकी शुद्धि तथा शृंगार विरली सच्ची प्रेमिका ही कर पाती है या भोगोंसे विरक्त भगवान्‌का विवेकी भक्त ही करता है।

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्। प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः॥
यच्छ्रेयो यदतुच्छं च यदपायविवर्जितम्। तत्तदाचर यत्नेन पुत्रेति गुरवः स्थिताः॥

'अशुभ कर्मोंमें लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर प्रयत्नपूर्वक शुभ कर्मोंमें लगाना चाहिये। यह सब शास्त्रोंके सारका संग्रह है। जो वस्तु कल्याणकारी है, तुच्छ नहीं है तथा जिसका कभी नाश नहीं होता, उसीका यत्नपूर्वक आचरण करना चाहिये। हे वत्स! गुरुजन यही उपदेश देते हैं।' (योगवासिष्ठ, मुमुक्षु० ७। १२-१३)

सच्चिदानन्दमयी योगशक्ति—श्रीराधा

(डॉ० श्रीकृष्णवल्लभजी दवे)

श्रीराधाजीका जन्म बरसानेमें हुआ था। उनके पिता वृषभानु और माता कीर्ति थीं। बचपनसे ही उनके चेहरेपर असाधारण ओजस्विताकी दमक अहर्निश छायी रहती थी—अतिविचित्र जो थीं वे, मानो सच्चिदानन्दमयी योगशक्तिका साक्षात् अवतार।

कहा जाता है कि जब वे मात्र छ: वर्षकी थीं, तभी उनकी माँका देहान्त हो गया था। फलत: उनके पिता ने उन्हें नानीके घर भेज दिया और स्वयं बरसाना छोड़कर अपनी दूसरी पत्नी कपिलाके साथ रहने वृन्दावन चले गये किंतु कुछ ही वर्षों बाद जब उनकी नानीमाँका भी देहांत हो गया तो पिताने उन्हें अपने पास वृन्दावन बुलवा लिया। इन परिस्थितियोंमें वृन्दावन जाते समय गोकुलके गोपीनाथ महादेव मन्दिरके मार्गपर उनकी श्रीकृष्णचन्द्रसे भेंट हुई। तब वे बारह वर्षकी थीं और श्रीकृष्ण सात वर्षके। अपनी इसी प्रथम भेंटमें वृन्दावनका 'कन्हैया' राधाजीके लिये मात्र 'कान्हा' होकर रह गया था।

श्रीकृष्ण जब पाँच वर्षके थे तभी गोकुल से वृन्दावन आ गये थे। वृन्दावनमें उनके पराक्रमोंकी अत्यधिक ख्याति रही। उनकी बाललीलाके प्रसंगने तो सर्वत्र अपना अनूठा रंग जमा लिया। जैसे मात्र छ: वर्षकी आयुमें गोपांगनाओंके चीरहरणकी लीला, सात वर्षकी आयुमें देवराज इन्द्रके गर्वहरणकी गोवर्धनलीला एवं वेणुलीला आदि।

यों श्रीकृष्णके वृन्दावन आनेपर राधाजीका मन श्रीकृष्णसंगके कारण आनन्दमग्न हो चुका था। ललिता, आदि अनेक सखियोंका संग भी उन्हें प्राप्त था। फिर क्या था? आनन-फाननमें लीलाओंका दौर चल पड़ा—जैसे श्रीकृष्णका सखियोंके संग खूब हिल-मिलकर खेलना, मिल-जुलकर झूले झूलना, पुष्पमालाओंसे सजना, संग-संग विचरण करना। ऐसेमें राधाजीकी छविका तो कहना ही क्या? एकदम निराली अनुपम अपूर्व; यथा श्रीकृष्णके कंधोंपर हाथ रखकर हौले-हौले चलते समय कदमोंका सहज ही थिरकने लगना, आँखमिचौली करना—सखियाँ इन सबमें उनके साथ थीं।

नेहकी डोर दृढ़से दृढ़तर हुई। पावन प्रणय मग्न हुआ, सखाधर्म सुदृढ़ हुआ। सहज भाव प्रबल हुआ। ऐसेमें फिर श्रीकृष्ण, श्रीवेणुका तो कहना ही क्या? राधा अब करें तो क्या करें? देवकी दिव्यतासे कैसे विलग रहें! अन्तत: उन्हें दिव्य महारासमें सम्मिलित होना ही पड़ा। श्रीकृष्णकी वेणुके संग नृत्य, ताल एवं लयमें लीन होकर, उल्लासमें सराबोर होकर, कृष्णमय होकर, परिपूर्ण होकर। भवसागर जहाँ भावसागर बन जाता है और फिर महाभावसागरका रूप ले लेता है, वैसे ही राधाके लिये कृष्णसुख ही स्वसुख हो गया। राधाकी सारी चेष्टाएँ श्रीकृष्णको समर्पित हो गयीं। इधर श्रीकृष्णकी चेष्टाएँ भी राधाजीको समर्पित हो गयीं।

राधा माधवके संग उन्हींमें समायी रहतीं। एक दूजेके लिये एक दूजेके संग। राधा-माधवकी यह छवि देशके जन-जनके हृदय-पटलमें चिरकालसे अंकित है। राधाजी श्रीकृष्णकी परम आराधिकाके रूपमें अभिमण्डित होती रही हैं। श्रीकृष्ण ही उनके परम आराध्य है। वे कृष्णकी साक्षात् आत्मा हैं, अभिन्नरूपा हैं, दिव्य आनन्दमयी शक्ति हैं, मूलप्रकृति हैं, परमप्रिया हैं—फिर उस वियोगिनीकी गाथा जो स्वयंकी निजताको दावपर लगाकर, क्षण-क्षण नि:शेष होकर, पल-पल मिटकर-तपकर सच्चिदानन्दमय योगशक्तिका रूप धारण किये सनातन-कालसे श्रीकृष्णकी चिरसंगिनीके रूपमें, अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। यही स्वरूप उनकी अनन्तताका एहसास कराता है। यही अवधारणा उनके सामर्थ्यको उजागर कर देती है। यही कारण है कि यहाँ श्रीराधाको सच्चिदानन्दमयी योगशक्तिका अवतार कहा गया है।

श्रीराधामाधव चरण बन्दौं बारम्बार।
एक तत्त्व दोउ तन धरे नितरस पारावार॥

दारुब्रह्म (भगवान् जगन्नाथ)-का प्राकट्य-रहस्य

[एक मधुर प्रसंग]

एक समय श्रीधाम द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रात्रिकालमें श्रीरुक्मिणी, सत्यभामा प्रभृति प्रधान अष्ट-राजमहिषियोंके मध्य शयन कर रहे थे। स्वप्नावस्थामें आप अकस्मात् 'हा राधे! हा राधे!' उच्चारण करते हुए क्रन्दन करने लगे। जब अन्य किसी प्रकार प्रभुका क्रन्दन नहीं रुका, तब बाध्य होकर महारानी श्रीरुक्मिणीदेवीने अपने प्राणवल्लभको चरणसंवाहनपूर्वक जाग्रत् किया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र निद्राभंग होनेपर किंचित् लज्जित हुए और उन्होंने अति चतुराईसे अपना भाव गोपन कर लिया और पुनः निद्रित हो गये; परंतु इसका रहस्य जाननेके लिये महारानियोंके हृदयमें अत्यन्त व्यग्रता उत्पन्न हुई। सब परस्पर कहने लगीं 'देखो, हम सब मिलकर सोलह सहस्र एक सौ आठ महिषियाँ हैं और कुल, शील, रूप एवं गुणमें कोई भी अन्य किसी रमणीसे न्यून नहीं है; तथापि हमारे प्राणवल्लभ किसी अन्य रमणीके लिये इतने व्याकुल हैं, यह तो बड़े ही विस्मयकी बात है! रात्रिमें स्वप्नावस्थामें भी जिस रमणीके लिये प्रभु इतने व्याकुल होते हैं, वह रमणी भी न जाने कितनी रूप-गुणवती होगी!' इसपर श्रीरुक्मिणीदेवी कहने लगीं, 'हमने सुना है कि वृन्दावनमें राधानाम्नी एक गोपकुमारी है, उसके प्रति हमारे प्राणेश्वर अत्यन्त आकृष्ट हैं; इसीलिये रूप-लावण्य-वैदग्ध्य-पुंज नयनाभिराम श्रीप्राणनाथ हम सबके द्वारा परिसेवित होकर भी उस सर्वचित्ताकर्षक-चित्ताकर्षिणीके अलौकिक गुणग्राम भूल नहीं सके हैं।' श्रीसत्यभामादेवी कहने लगीं, 'सब ठीक ही है, तो भी वह एक गोपकन्याके सिवा तो कुछ नहीं; फिर उसके प्रति हमारे प्राणकान्त इतने आसक्त क्यों हैं? अस्तु, जो कुछ भी क्यों न हो, हमारी सम्मतिमें तो इस सम्बन्धमें रोहिणीमाताको पूछनेपर ही इसका ठीक-ठीक पता लग सकेगा; क्योंकि उन्होंने स्वयं वृन्दावनमें वास किया है और उस समयकी सम्पूर्ण घटनाओंको वे भलीभाँति जानती हैं।' यह प्रस्ताव सबको रुचा। रात्रि बीती, प्रातःकाल हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकृत्य समापन करके राजसभाको पधारे और यथासमय पुनः अन्तःपुरमें पधारकर स्नानादि करके समाधानपूर्वक भोजन करने बैठे। राजभोग सम्मुख आकर उपस्थित हुए, उद्धवादि सखा-वृन्दसहित प्रभुने भोजन किया और आचमन करके किंचित् विश्रामपूर्वक पुनः राजसभाको गमन किया। इस अवसरको पाकर महारानियोंने श्रीरोहिणीदेवीको पूर्वरात्रिकी घटना सुनाकर उनसे व्रज-वृत्तान्त पूछा। माताजी कहने लगीं, 'प्यारी पुत्रियो! यद्यपि मैं व्रजलीलाकी अधिकांश घटनाएँ जानती हूँ, तथापि माता होकर पुत्रकी गुप्त लीलाओंका रहस्य किस प्रकार कह सकती हूँ? यदि राम-कृष्ण यह कथा सुन लें तो फिर लज्जाकी सीमा न रहेगी।' इसपर महिषीगण कहने लगीं, 'माताजी! जिस किसी प्रकार भी हो सके, हमें व्रजलीलाकी कथा तो आपको अवश्य ही सुनानी होगी।' माताजीने कहा—'तब एक उपाय करो—सुभद्राको द्वारपर पहरेके लिये बैठा दो, किसीको अंदर न आने दे; फिर मैं निस्संकोच तुम्हारे निकट व्रजलीलाका वर्णन करूँगी।' माताजीने यह कहकर सुभद्राकी ओर देखा और कहा, 'सुभद्रे! यदि राम-कृष्ण आयें तो उन्हें भी कदापि भीतर मत आने देना।' माताजीका आदेश पालन किया गया। सुभद्रा 'जो आज्ञा' कहकर द्वार-रक्षा करने लगीं। महिषीवृन्द माताजीको चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं और माताजीने सुमधुर व्रजलीला वर्णन करना आरम्भ किया।

इधर राजसभामें राम-कृष्ण दोनों भाई चंचल हो उठे। जब किसी प्रकार भी राजसभामें नहीं ठहर सके, तब उत्कण्ठितचित्त होकर अन्तःपुरकी ओर चल पड़े। आकर देखते हैं कि सुभद्रादेवी द्वारपर खड़ी हैं। उन्होंने सुभद्रादेवीसे पूछा, 'तुम आज यहाँ क्यों खड़ी हो? द्वार छोड़ दो; हमलोग भीतर जायँ।' श्रीमती सुभद्रादेवीने कहा, 'रोहिणी माँने इस समय तुम्हारा अन्तःपुरमें प्रवेश करना निषेध कर रखा है, अतः तुमलोग अभी भीतर नहीं जा सकोगे।' यह सुनकर जब दोनों भाई आश्चर्यान्वित होकर

इस निषेधका कारण ढूँढ़ने लगे, तब माताजीकी वह रहस्यपूर्ण व्रजलीलात्मक वार्ता उन्हें सुनायी दी। यह वार्ता श्रीवृन्दावनचन्द्रकी परम कल्याणमय, परमपावन, अद्‌भुत, मंगलमय रासविहारात्मक थी। सुनते-सुनते दोनों भाइयोंके मंगल श्रीअंगमें अद्‌भुत प्रेम-विकारके लक्षण दिखायी देने लगे। क्रमशः दोनों ही प्रेमानन्दमें विह्वल हो गये। अविश्रान्त प्रेमाश्रुकी मन्दाकिनीधारा प्रवाहित होकर दोनोंके गण्डस्थल एवं वक्ष:स्थलको प्लावित करने लगी। यह देखकर श्रीमती सुभद्रादेवी भी एक अनिर्वचनीय महाभावावस्थाको प्राप्त हो गयीं। जिस समय माताजी स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीकी अद्‌भुत प्रेमवैचित्त्यावस्थाका वर्णन करने लगीं, उस समय श्रीबलरामजी किसी प्रकार भी धैर्य धारण न कर सके। उनके धैर्यका बाँध टूट गया, श्रीअंगमें इस प्रकार महाभावका प्रकाश हुआ कि उनके श्रीहस्तपद संकुचित होने लगे और जब माताजी निभृत निगूढ़ विलास-वर्णन करने लगीं तब तो श्रीकृष्णचन्द्रकी भी यही अवस्था हुई। दोनों भाइयोंकी यह अद्‌भुत अवस्था देखकर श्रीमती सुभद्रादेवीकी भी यही अवस्था हुई। तीनों ही मंगलस्वरूप महाभावस्वरूपिणी स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीके अपार महाभावसिन्धुमें निमज्जित होकर ऐसी स्वसंवेद्यावस्थाको प्राप्त हो गये कि वे लोगोंके देखनेमें निश्चल स्थावर प्रतिमूर्तिस्वरूप परिलक्षित होने लगे। निश्चल, निर्वाक्, स्पन्दरहित महाभावावस्था! अतिशय मनोऽभिनिवेशपूर्वक दर्शन करनेपर भी श्रीहस्तपदावयव किंचित् भी परिलक्षित नहीं होते थे। आयुधराज श्रीसुदर्शनने भी विगलित होकर लम्बिताकार धारण कर लिया।

इसी समय स्वच्छन्दगति देवर्षि नारदजी भगवद्दर्शनके अभिप्रायसे श्रीधाम द्वारकामें आ उपस्थित हुए। उन्होंने राजसभामें जाकर सुना कि राम-कृष्ण दोनों भाई अन्त:पुर पधारे हैं। देवर्षिकी सर्वत्र अबाध गति तो है ही; अन्त:पुरके द्वारपर जाकर उन्हें जो अद्‌भुत दर्शन हुए, उससे देवर्षि स्तम्भित हो गये। इस प्रकारका दर्शन उन्होंने पूर्वमें कभी नहीं किया था। निज प्राणनाथकी ऐसी अद्‌भुत अवस्थाके कारणका विचार करते हुए प्रेमविवश स्तम्भ-भावको प्राप्त होकर देवर्षि भी वहीं चुपचाप खड़े रह गये। कुछ ही क्षण पश्चात् जब माताजीने पुनर्वार किसी एक रसान्तरका प्रसंग उठाया, तब उन सबको पूर्ववत् स्वास्थ्यलाभ हुआ। सिद्धान्ततः रसान्तरद्वारा रसापत्तिका विदूरित होना संगत ही है। इसी अवसरपर महाभावविस्मित देवर्षि नारदजीने बहुविध स्तव-स्तुति करना आरम्भ कर दिया। करुणावरुणालय श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रने देवर्षिद्वारा स्तुत होकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'देवर्षे! आज बड़े ही आनन्दका अवसर है। कहिये, मैं आपका क्या प्रीति-सम्पादन करूँ?' देवर्षिने कर जोड़ प्रार्थना की—'प्रभो! वर्तमानमें यहाँपर उपस्थित होकर आप सबका जो एक अदृष्टाश्रुतपूर्व महाभावावेश परिलक्षित हुआ है, स्वरूपतः वह क्या पदार्थ है और किस प्रकार उस महावस्थाका प्राकट्य हुआ? कृपया सविशेष उल्लेख करके दासको कृतार्थ कीजिये। सर्वप्रथम तो सेवामें यही एकान्त निवेदन है।'

भक्तवत्सल श्रीभगवान् अमन्दहास्यचन्द्रिकापरि-शोभित सुन्दर श्रीवदन-चन्द्रमासे देवर्षि नारदजीके सर्वात्माको आप्यायित करते हुए इस प्रकार वचनामृतवर्षण करने लगे—'देवर्षे! प्रातः तथा मध्याह्नकृत्य-समापनपूर्वक जिस समय हम दोनों भाई राजसभामें समासीन थे, उसी समय महिषीगणके द्वारा पूछे जानेपर माता रोहिणीदेवीने महाचित्ताकर्षिणी अपार माधुर्यमयी व्रजलीलाकथाकी अवतारणा की। महामाधुर्यशिखरिणी व्रजलीलावार्ताका ऐसा प्रभाव है कि हम जहाँ और जिस अवस्थामें भी हों, हमें वहींसे और उसी अवस्थामें आकर्षण करके वह कथास्थलपर खींच लाता है। हम दोनों भाई उसी तरह आकर्षित होकर यहाँ उपस्थित हुए और देखा कि सुभद्रा द्वारपालिकारूपमें द्वारपर खड़ी हैं। उत्कण्ठावश अन्त:प्रवेशकाम हम दोनों श्रीसुभद्राद्वारा रोके जानेपर प्रवेशनिषेधका कारण ढूँढ़ते रहे, उसी समय श्रीमाताजीके मुखारविन्दविगलित अत्यद्‌भुत व्रजलीलामाधुरीने कर्णगत होकर हमारे हृदय विगलित कर दिये। तत्पश्चात् जो अवस्था हुई, उसका तो आपने प्रत्यक्ष दर्शन किया ही है। मेरी प्राणेश्वरी महाभावरूपिणी श्रीराधाके महाभावकर्तृक सम्पूर्ण भावसे ग्रस्त होनेके कारण हम आपका पधारना भी

नहीं जान सके।' इतना कहकर भगवान्ने जब देवर्षिसे पुनः वरग्रहणका अनुरोध किया, तब देवर्षि प्रार्थना करने लगे—'भगवन्! मैं और किसी वरका प्रार्थी नहीं हूँ, निजजनोंके सर्वाभीष्टप्रदाता चरणयुगलमें केवल यही प्रार्थना है कि आप चारोंकी जिस अत्यद्भुत महाभावावेशमूर्तिका मैंने प्रत्यक्ष दर्शन किया है, वे ही भुवनमंगल चारों स्वरूप जनसाधारणके नयनगोचरीभूत होकर सर्वदा इस पृथिवीतलपर विराजमान रहें। माया-संनिपातमें ग्रस्त जीवसमूह एवं प्रभु-दर्शनविरहकातर भक्तजनके लिये वह महासंजीवन-रसायन स्वरूपचतुष्टय सर्वोत्कर्षसहित जययुक्त हो।' करुणायतन भक्तवांछा-पूर्णकारी श्रीभगवान्ने कहा—'देवर्षे! इस विषयमें मैं पूर्वसे ही अपने दो और भक्तोंके प्रति भी आपके प्रार्थनानुरूप ही वचनबद्ध हूँ—एक भक्तचूडामणि महाराज इन्द्रद्युम्न और द्वितीय परमभक्तिस्वरूपिणी श्रीविमलादेवी। निखिलप्राणि-कल्याणहित भक्तचूडामणि महाराज इन्द्र-द्युम्नकी घोरतर तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं नीलाचल क्षेत्रमें दारुब्रह्मस्वरूपमें अवतीर्ण होकर जनसाधारणको दर्शन देनेका वर प्रदान कर चुका हूँ तथा महाविद्या-स्वरूपिणी श्रीविमलादेवीद्वारा अनुष्ठित महातपस्यासे प्रसन्न होकर उनकी प्राणिमात्रको बिना विचार किये महाप्रसाद वितरण करनेकी प्रतिज्ञाको उक्त स्वरूपसे ही पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे चुका हूँ। अतएव इन तीनों उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये हम चारों इसी स्वरूपमें आगामी कलियुगमें लवण-समुद्रतटवर्ती नीलाचल-क्षेत्रमें अवतीर्ण होकर प्रकाशमान रहेंगे।' सर्वजीव-कल्याणव्रत देवर्षि श्रीनारदजीने मनोवांछित वर प्राप्तकर प्रभुचरणारविन्दमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और मधुर वीणासे करुणावारिधि श्रीप्रभुके अमृतमय नाम-गुणोंकी माधुरीका गान करते-करते यदृच्छागमन किया। श्रीराम-कृष्णने भी माताजीके कथंचित् संकोचकी आशंका करके उस स्थानसे प्रस्थान किया। ये ही मूर्तिचतुष्टय श्रीजगन्नाथजी (श्रीकृष्ण), श्रीबलभद्रजी (श्रीबलराम), श्रीसुभद्राजी एवं सुदर्शनरूपसे श्रीनीलाचल-क्षेत्रको विभूषित करके अद्यापि विराजमान हैं। **[व्रजके एक महात्मा]**

राधाजीद्वारा माधवके अपूर्ण चित्रांकनका रहस्य



श्रीमती मूरति अंकित करती।
मधुर तूलिका कोमल करमें लै नाना रँग भरती॥
विविध भाँति अति मधुर मनोहर रूप बनाती जाती।
तन्मय मन, दृग-दृष्टि-अचंचल, उमँग न हृदय समाती॥
नव-नीरद-शुचि-नील-श्याम तनु उज्ज्वल आभा आँकी।
भाल विशाल तिलक मृग-मदके, भ्रुकुटि मनोहर बाँकी॥
सरस नयन शोभाके आकर मोहन आँजे अंजन।
अतिशय चपल चोर मन-धनके सुर-ऋषि-मुनि-मन रंजन॥
मुख, मुसकान, नासिका नीकी, कानन कुण्डल झलकैं।
केश कृष्णघन घूँघरवारे, इत उत बिथुरीं अलकैं॥
मणिमय मुकुट मयूर-पिच्छ-युत सुंदर सिर पै साजै।
कम्बुकण्ठ बनमाल विराजै रत्न-हार उर राजै॥
पीत वसन दमकत दामिनि-सो कटि किंकिणि अति सोहै।
निरखि-निरखि जिन अंकित मूरति भामिनि निज मन मोहै॥
लई तूलिका खींचि अचानक भई सशंकित भारी।
चरण उभय आँके नहिं पियके, गहरी बात विचारी॥
भाजि जायँ जीवनधन पाछें जो चरणनके पाये।
तो फिर कहा बनैगो मेरो, यही सोच उर छाये॥
ठाढ़े निरखि रहे मनमोहन प्रीति-रीति अति पावन।
प्रकट भये, बिहँसे, पुलकित तनु भई, देखि मनभावन॥

[पद-रत्नाकर]

श्रद्धा-विश्वासपूर्वक काशीवासका फल

[तुम अन्नपूर्णा माँ रमा हो और हम भूखों मरें?]

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

कल सायंकालकी ही तो बात है।

गाँधी-मैदानमें बैठा देख रहा था भगवान् अंशुमालीकी ओर, जो द्रुतगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे थे।

अचानक एक वृद्ध बंगाली सज्जन आकर मेरी बेंचपर बैठ गये।

सफेद दाढ़ी, सफेद कुर्ता-धोती, हाथमें बंगलाका एक दैनिक।

बात शुरू की उन्होंने।

सामान्य परिचयकी चर्चा उठी तो काशीका नाम आते ही श्रद्धासे भट्टाचार्य महाशयका हृदय भर उठा। बोले—'काशी तो कैलाश है। परंतु अब कहाँ रह गयी वह काशी? अब तो वह कलकत्ता-जैसी नगरी बनती जा रही है! क्या खयाल है आपका?'

मैं क्या कहता! काशीमें भी आधुनिकताका रंग आ ही रहा है।

× × ×

'बाबा विश्वनाथकी नगरीमें, माँ अन्नपूर्णाके दरबारमें कभी कोई भूखा नहीं रह सकता। इस बातकी लोगोंने परीक्षा करके देखी है।' कहते-कहते वे सुना गये लगभग १९वीं शतीके मध्यकी एक घटना।

बोले—मेरे ही पूर्वपुरुषोंके सम्बन्धी एक वृद्ध दम्पतीने काशीवासका निर्णय किया। उनका एक भतीजा था, जो कलकत्तेमें नौकरी करता था। उसने उन्हें काशी पहुँचा दिया और उनके खर्चके लिये बीस रुपया मासिक भेजने लगा।

उस जमानेमें बीस रुपयेका मूल्य बहुत था। वृद्ध ब्राह्मण दम्पती स्वयं तो मजेमें अपनी गुजर करते ही, साधु-संन्यासियोंकी भी सेवा करते, फिर भी दस-पाँच रुपया बच जाता।

× × ×

'अचानक भतीजेकी नौकरी छूट गयी। दो महीनेके खर्चके लिये चालीस रुपये भेजते हुए उसने लिखा—'ताऊजी! मेरी नौकरी छूट गयी है। दो महीनेकी तनखाह मिली है, इससे आपको भी दो माहका खर्च भेज रहा हूँ। कौन जाने कितने दिन बेकार रहना पड़े। इसलिये जरा हाथ रोककर खर्च करियेगा। आपके आशीर्वादसे मुझे शीघ्र ही नौकरी मिल जायगी, ऐसी आशा है।'

वृद्ध दम्पतीको चिंता तो हुई, पर उन्होंने सब कुछ बाबा विश्वनाथ और अन्नपूर्णा माईपर छोड़ दिया।

× × ×

पहलेकी संचित निधि और अन्तमें मिले चालीस रुपयोंसे वृद्ध दम्पतीने छः मासतक काम चलाया। अन्तमें एक दिन ऐसा आ ही गया, जब शकरकन्दका एक टुकड़ा घरमें बच रहा। उसीको खाकर दोनोंने पानी पी लिया!

दिन भर यों ही निकल गया।

× × ×

उन दिनों कुछ मारवाड़ी सज्जन सीधा बाँटा करते थे। एक-एक सीधेमें आटा, दाल, चावल, घी आदि पर्याप्त रहता। लगभग ३ रुपये का सामान, ऊपरसे २ रुपये दक्षिणा भी देते। सेठके कर्मचारी उन लोगोंके घर सीधा पहुँचा आते थे, जिनके प्रति सेठकी श्रद्धा होती थी।

× × ×

वृद्ध ब्राह्मण दम्पतीका तो निश्चय था कि वे विश्वनाथकी नगरीमें माँ अन्नपूर्णाके रहते किसीसे भिक्षा माँगकर पेट न भरेंगे। वे चुपचाप पड़े थे अपनी कोठरीमें।

× × ×

दूसरे दिन वृद्ध दम्पतीकी कोठरीके बाहर एक अपरूप बालिका आ खड़ी हुई। सीधा बाँटनेवाले सेठके कर्मचारी वहाँसे निकले तो उसने उन्हें पास बुलाया। उनके पास आनेपर बोली—'देखो भाई! मेरी

बूढ़ी माँ और बाबा कलसे भूखे पड़े हैं। तुम एक सीधा हमें भी दे जाओ।'

कर्मचारी बोले—'सीधा हम उन्हीं लोगोंको बाँटते हैं, जिनको बाँटनेकी आज्ञा हमारा सेठ देता है। बिना आज्ञा हम सीधा नहीं बाँट सकते।'

वह बालिका आँखोंमें आँसू भरकर बोली—'तो क्या होगा बाबा? मेरे बूढ़े माँ-बाबाके पास कुछ नहीं है। मर जायँगे वे बिना भोजनके? अपने सेठसे कहो न जाकर कि मेरे माँ-बाबा भूखे पड़े हैं कलसे।'

'अच्छा माँ! हम सेठसे जाकर जरूर कहेंगे।'

बालिकाकी बात टालनेकी क्षमता मानो उनमें थी ही नहीं।

× × ×

सेठसे उसके कर्मचारियोंने जाकर कहा—'सेठजी! रास्तेमें एक बालिका हमें मिली थी। बड़े सम्पन्न घरकी लड़की जान पड़ती थी। वह कह रही थी कि उसके बूढ़े माता-पिताने कलसे कुछ नहीं खाया है। उनके लिये एक सीधा माँगा है।'

× × ×

सेठजीके मनमें आ गया—'चलो देखें।'

सीधा लेकर वे कर्मचारियोंके साथ वृद्ध ब्राह्मण दम्पतीके मकानपर पहुँचे। कुण्डी खटखटायी।

वृद्ध दम्पतीने किसी तरह दरवाजा खोला। सेठने उनसे पूछा—'बाबा! आपकी बेटी कहाँ है?'

वे तो हैरान। बोले—'कहाँ? हमारे तो कोई बेटी नहीं, एक भतीजा है जो कलकत्तेमें रहता है।'

'अच्छा, यह तो बताइये, आपने कलसे कुछ खाया पिया है या नहीं?'

'क्यों हमने तो किसीसे कुछ कहा नहीं!'

'आपकी बेटी कह रही थी कि मेरे माँ-बाबा कलसे भूखे हैं। भूखसे उनके प्राण जा रहे हैं!'

'सेठजी, और किसीने कहा होगा। आप मकान भूल तो नहीं गये हैं?'

सेठने कर्मचारियोंसे पूछा। वे बोले—'नहीं सेठजी! यही मकान है। हमें खूब याद है। यहींपर वह लड़की रो-रोकर हमसे कह रही थी कि मेरे बूढ़े बाबा और माँ भूखे हैं कलसे। उन्हें एक सीधा दे जाओ।'

× × ×

सेठके बहुत कहनेपर वृद्ध दम्पतीने बताया कि बाबा विश्वनाथ और माँ अन्नपूर्णाको छोड़कर और कोई नहीं जानता कि हम दोनोंने कलसे कुछ नहीं खाया। हमने किसीसे कहा ही नहीं।

× × ×

माँ अन्नपूर्णा भला अपने भक्तोंको भूखा रहने दे सकती हैं? यह भला हो ही कैसे सकता है—

'तुम अन्नपूर्णा माँ रमा हो और हम भूखों मरें?'

× × ×

सेठका आग्रह स्वीकारकर वृद्ध दम्पतीको उसका सीधा लेना ही पड़ा और तबसे नियमित रूपसे वहाँसे भी सीधा आने लगा।

× × ×

कुछ दिनोंके बाद भतीजेका पत्र आया जिसमें लिखा था—'ताऊजी! आपलोगोंके आशीर्वादसे मुझे पहलेसे भी अच्छी नौकरी मिल गयी है। अब मैं आपको तीस रुपये मासिक भेजा करूँगा। खाना बनानेमें आपको बड़ा कष्ट होता होगा। कोई दाई आदि रख लीजियेगा।'

× × ×

वृद्ध दम्पतीको भतीजेका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। उन्होंने सेठकी कोठीपर जाकर उनसे भेंट की और उनसे अनुरोध किया कि वे अब उनको मिलनेवाला सीधा किसी अन्य व्यक्तिको दे दिया करें; क्योंकि अब उनके भतीजेको काम मिल गया।

भतीजेका पत्र भी उन्होंने सेठको दिखाया। पर सेठ बोला—'यह नहीं हो सकता बाबा। आप नाराज न हों। जैसा आपका वह भतीजा, वैसे ही मैं आपका बेटा। आपको तो यह सीधा लेना ही होगा!'

वृद्ध दम्पती सेठके आग्रहको टाल नहीं सके। सेठके यहाँसे सीधा आता रहा। भतीजेके यहाँसे आनेवाले पैसेसे वे साधु-संन्यासियों और दीनोंकी सेवा करने लगे।

× × ×

श्रद्धा और विश्वासकी कैसी अद्भुत कहानी!

× × ×

'यह सारा खेल श्रद्धा और विश्वासका ही तो है।' कहते हुए भट्टाचार्य महाशयने एक और घटना सुनायी।

घटना है उनकी माताकी मौसीके सम्बन्धमें।

वैधव्यके दिन बिता रही थीं बेचारी। बाबा विश्वनाथजीके दर्शनोंकी, काशी पहुँचनेकी बड़ी लालसा थी उनकी।

गरीबीका जाल बिछा था। श्रीरामपुरसे काशी पहुँचना विषम समस्या थी।

उनकी एक ही रट थी—

'विश्वनाथ बाबा टाका दाओ, देखा दाओ!'

(हे बाबा विश्वनाथ! पैसा दो, दर्शन दो!)

× × ×

अचानक एक दिन उन्हें एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि रेलवे कम्पनी एक नयी लाइन खोल रही है। उसके लिये तुम्हारी ससुरालकी जमीन रेलवेने ले ली है। उसका मुआविजा कलकत्ता आकर ले जाओ।

कलकत्ता जाते ही सात-आठ सौ रुपये मिल गये।

फिर विश्वनाथ बाबाके दर्शन करनेके लिये काशी जानेसे उन्हें कौन रोक सकता था?

× × ×

काश, यह श्रद्धा, यह विश्वास हममें होता! फिर तो कुछ कहना ही नहीं था। पर हमारी तो वही दशा है जिसका चित्रण रामकृष्ण परमहंसने एक दृष्टान्तमें किया है—

एक ग्वालिन नदी-पारसे दूध लेकर आया करती थी। बरसातके दिनोंमें नाव देरमें मिलनेसे दूध पहुँचानेमें बड़ी देर होती। एक दिन एक पण्डितजी, जो उससे दूध लेते थे, उससे बोले—'तू रोज बड़ी देर कर देती है। क्यों नहीं तू रामका नाम लेकर नदी पार कर लिया करती! रामका नाम लेकर लोग भवसागर पार कर जाते हैं। तुझसे यह नदी भी पार नहीं की जाती!'

दूसरे दिनसे पण्डितजीको सबेरे ही दूध मिलने लगा। कई दिन बाद पण्डितजीने ग्वालिनसे पूछा—'अब तो तू रोज सबेरे ही दूध ले आती है। अब तुझे रोज सबेरे ही नाव मिल जाती है?'

ग्वालिन बोली—'अब मुझे नावकी कौन जरूरत है महाराज! आपने जो तरकीब बता दी है, उससे मेरी नावकी उतराई भी बच जाती है।'

पण्डितजी हैरान होकर बोले—'कौन-सी तरकीब ग्वालिन?'

'वही राम-नामवाली तरकीब! मैं रामका नाम लेती हूँ और उधरसे इधर चली आती हूँ और इधरसे उधर चली जाती हूँ।'

'सच?'

'और क्या झूठ कहती हूँ महाराज!'

पण्डितजी आकाशसे गिरे। सहज ही विश्वास न हो सका उन्हें ग्वालिनकी बातपर। बोले—'मुझे दिखाओगी?'

'हाँ-हाँ, चलिये न?'

दोनों चल दिये। ग्वालिन रामका नाम लेकर झम-झम करती हुई नदी पार करने लगी। पण्डितजी राम-राम करके आगे बढ़े पर पानी ज्यों-ज्यों बढ़ने लगा त्यों-त्यों वे अपनी धोती ऊपर सरकाने लगे! स्थिति डूबने-जैसी होने लगी!

ग्वालिनने पीछे मुड़कर देखा। बोली—'यह क्या महाराज! आप रामका नाम भी लेते हैं और धोती भी समेटते जाते हैं?'

× × ×

हम भी इसी तरह रामका नाम लेते हैं और धोती भी समेटते जाते हैं। ग्वालिन-जैसा विश्वास हममें कहाँ है? उस वृद्ध दम्पतिकी तरह हम माँ अन्नपूर्णापर अपनेको कहाँ छोड़ते हैं? उस विधवा ब्राह्मणीकी भाँति हम परम विश्वाससे कहाँ कहते हैं—'बाबा, टाका, दाओ, देखा दाओ!' फिर यदि हम भवाटवीमें भटकते रहते हैं तो दोष किसका?

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव कि लह बिश्राम॥

मितव्ययिताका आदर्श

(श्रीरमाकान्तजी मिश्र)

अर्थशास्त्रकी ट्युटोरियल कक्षा। प्राचार्यमहोदयके सामने टेबलपर अभ्यास-पुस्तिकाएँ पड़ी थीं। छोटे प्रश्नोंके लंबे-चौड़े उत्तर। विद्यार्थियोंकी आँखें प्राचार्य महोदयके चेहरेपर थीं और प्राचार्य महोदयकी आँखें अभ्यासपुस्तिकाओंकी पंक्तियोंपर। उन्होंने पुस्तिकाओंको देखनेके बाद लड़कोंकी ओर देखते हुए कहा, 'Be clear and concise' (अर्थात् आपके उत्तर स्पष्ट एवं संक्षिप्त होने चाहिये)।

संध्याके समय एक दिन मन्त्रीमहोदय आये। आनेका उद्देश्य 'राष्ट्रीय प्रतिरक्षा-कोष' से सम्बन्धित था। उन्होंने भाषणके तारमें कह डाला,—'आज राष्ट्रके सामने जो खतरा है, उसे दूर करना हम सबोंका परम कर्तव्य है। आज आवश्यकता है कि हम स्वयं अपनी कुछ आवश्यकताओंको भूल जायँ और राष्ट्रके हितमें अपने तुच्छ हितोंकी बलि दे दें……।' अपने लंबे और सारगर्भित भाषणमें मन्त्रीजीने योजना एवं राष्ट्रीय रक्षाके लिये मितव्ययितापर जोर दिया।

देशके बड़े-बड़े समाचारपत्रोंने मुख-पृष्ठोंपर लिखा,'Wage war on wastes' (अर्थात् हम बर्बादियोंसे लड़ें)।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने तो बहुत पहले ही आसक्ति और अनबुझी आवश्यकताओंके विषैलेपनपर प्रकाश डालते हुए अर्जुनसे कहा था—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(२। ६२-६३)

आवश्यकताओंकी अनन्त, दूषित कुण्डलिनी और उनके भयावह परिणामोंकी ओर लोगोंके ध्यान सदासे आकर्षित किये गये हैं।

*   *   *

आप मानेंगे कि सभीकी कुछ आवश्यकताएँ होती हैं। जीवित रहनेके लिये हमें वायु चाहिये, ताप चाहिये, वस्त्र चाहिये, अन्न और जल चाहिये। यों कहिये, संसारमें आते ही आवश्यकताओंने हमें आ घेरा। फिर भी दो रास्ते हैं—अपव्यय और मितव्यय। इसीमें सारी अशान्ति और शान्ति बसती है।

लगाम ढीली की और घोड़ा लगा हवासे बातें करने। रास कड़ी हुई और बेचारा घोड़ा रास्तेपर आने लगा। पर एक ऐसा घोड़ा होता है, जो काफी ढीठ और उद्दण्ड हो जाता है। वह अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करता। लगामसे उसके जबड़े छिल जाते हैं, फिर भी वह रुकनेका नाम ही नहीं लेता जबतक कि सवार गिर नहीं पड़ता।

*   *   *

घरमें बच्चे नये खिलौनेके लिये मचलते हैं। औरतें नये गहनोंके लिये रूठती हैं। आवश्यकताओंकी गति अत्यन्त तीव्र है। हमें मोटर चाहिये, आलीशान मकान चाहिये, बगीचा चाहिये, सेवकोंका एक दल चाहिये। ये न भी मिलें, फिर भी दिवा-स्वप्न तो हम देखते ही हैं, इनके विषयमें।

इन सभी आवश्यकताओंके पीछे हमारी एक सच्ची आवश्यकता है कि इन बढ़ती आवश्यकताओंपर हमें नियन्त्रण कैसे करना चाहिये? आत्मसंयमद्वारा। आत्मसंयम कहाँसे आये? वस्तुओंकी निस्सारताका बोध होनेपर।

*   *   *

शहरमें अकेले आदमीके लिये दो कमरोंवाला एक फ्लैट क्या, एक कमरा भी काफी होता है। मेरे एक मित्रने पटना (राजेन्द्रनगर)-में अकेले दो कमरोंवाला फ्लैट लिया। वे एकमें सोते थे और दूसरेमें पढ़ते और मित्रोंसे मिल-जुल लेते थे। उन्होंने अपने विषयमें एक मनोरंजक कहानी हमें सुनायी। अपने कमरोंको धीरे-धीरे उन्होंने फर्नीचरसे सुसज्जित करना प्रारम्भ किया। अपने आरामके लिये एक आरामकुर्सी थी उनके यहाँ। अब

दो मित्रोंके सामने वे अकेले आरामकुर्सीपर बैठें तो कैसे? दो से तीन कुर्सियाँ बड़ी-बड़ी और चली आयीं। धीरे-धीरे इनका ताँता बढ़ चला। पहले बेचारे एक ही टेबलपर पढ़ भी लेते, दाढ़ी भी बना लेते और अखबार वगैरह भी रख छोड़ते। अब 'डाइनिंग टेबल' आया, दो छोटे-छोटे टेबल अखबार रखनेके लिये और बरामदेकी शोभा बढ़ानेके लिये आये। आलमारियाँ आ पहुँचीं। घर क्या? फर्नीचरकी एक दूकान-सी हो गयी। चलने फिरनेको भी काफी कम जगह बच रही। अन्तमें उन्होंने सब फर्नीचर घर भिजवा दिया और काफी जगह हो गयी।

हमारी भी व्यग्रता बढ़ती चलती है। हम हैं कि आवश्यकताओंको पूरा करके दम मारनेको परेशान और आवश्यकताएँ वे हैं कि एक गयी और दूसरी कई साथियोंको साथ लिये आ खड़ी हुई। गजबकी व्यग्रता है। वह बढ़ती ही जाती है और हमारी मुट्ठी छोटी पड़ रही है। हम हार माननेको तैयार नहीं हैं। इतनी दूरीतक हमारा अहंकार पहुँच गया है कि दूसरोंके आगे हार माननेको तैयार नहीं। आजका मानव व्यग्रतामें—खिंचाव (tension)-में जी रहा है। उसे कभी शान्ति नहीं। युद्धकी आशंका है, दीवालियेपनका डर है, हारका भय है। **'तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर'** को हमने उलट डाला है, जो वस्तु-स्थितिसे कभी भी मेल नहीं खाता। **'लंबे पाँव पसार दो, मत देखो तुम सौर।'** अब तो आफत आ गयी है! जो जितना अधिक भोगैश्वर्योंके पीछे है, उसका जीवन-मान उतना ही अधिक बढ़ा-चढ़ा है। मनकी सारी शान्ति गवाँकर काठ-कबाड़ जुटाये चलो, इसीमें आज जीवनकी सार्थकता है।

'सादा जीवन और उच्च विचार' को आज कायरोंका आदर्श कहा जाता है। आजके मानवकी दृष्टिमें कबीर फीके पड़ गये, जिन्होंने कहा है—

साईं इतना दीजिये जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय॥

* * *

आजकी अधिकांश आवश्यकताएँ कृत्रिम हैं। सभ्यताके बढ़ते रोगकी देन हैं। बाह्य आडम्बरकी उछल-कूद हैं। आदमी अपनी मुट्ठी देखकर खर्च नहीं करता, बल्कि अपनी इच्छा देखकर रोता है। आजका तथाकथित सभ्य मस्तिष्क दुखी है, रुग्ण है।

* * *

विद्यार्थीने कम शब्दोंमें भाव स्पष्ट नहीं किया। मन्त्री महोदयने लंबे भाषणके दौरानमें मितव्ययिताके गुणोंका बखान किया, पर वे सब जहाँ-के-तहाँ रह गये। अमल तो उसपर किसीने नहीं किया।

हम बकते जाते हैं, लिखते जाते हैं। एक ही बातको दस तरहसे कहनेके आदी हैं। कठिनता और दुरूहताको हम शैलीका एक विशेष गुण मान बैठें हैं। विचारोंमें मितव्ययिताकी आवश्यकता है।

जेट और राकेटके युगमें भी हम शिथिलताके आदी हैं। यह हमारी मूर्खता है। अभी एक मूर्ख हमारी बगलमें आ बैठता है। अनाप-शनाप बकने लगता है और हम भी अपना काम छोड़ उससे उलझ पड़ते हैं। काम गया ताखपर। तो हमें समयकी मितव्ययिताकी भी आवश्यकता है।

* * *

हम बुद्धिका प्रयोग करें; क्योंकि भगवान्‌ने बड़ा सोच-समझकर हमें एक दिमाग दिया है। हित-अनहितकी पहचान सबोंको है। न्यूनतम व्ययपर अधिकतम लाभ सभी क्रियाओंका मौलिक सिद्धान्त रहा है। इसे एक बार भला आजमाकर तो देखिये कि आप इस परीक्षामें कहाँतक सफल होते हैं और आपमें आत्मसंयमकी कितनी मात्रा है।

भूल-सुधार—इसी अंकके पृष्ठ ४० के मध्यमें प्रकाशित सं० २०७५ के स्थानपर सं० २०७६ पढ़ें।

प्रयागका कुम्भ एवं अर्धकुम्भ

हिन्दू-समाजमें प्राचीन कालसे ही कुम्भ-पर्व मनानेकी प्रथा चली आ रही है। अमृतप्राप्तिके निमित्त देवताओं और दानवोंने मिलकर समुद्रमंथन किया। समुद्रमंथनके फलस्वरूप चौदह अप्रतिम रत्नोंकी प्राप्ति हुई, जिनमें अमृतकुम्भ भी एक था, परंतु अमृतप्राप्तिके अनन्तर अमृतकुम्भके लिये दोनों पक्षोंमें भयंकर युद्ध होने लगा। अमृतकुम्भको हस्तगत करनेके प्रयासमें उसकी बूँदें चार स्थानोंपर गिर पड़ीं; अतः उन्हीं चार स्थानोंपर कुम्भयोगमें कुम्भ-मेलेका आयोजन होता है। उपर्युक्त देवासुरसंग्राम बारह दिनोंतक चला। देवताओंके बारह दिन मनुष्यके बारह वर्षोंके बराबर होते हैं। अतः बारह वर्षोंके अनन्तर ही कुम्भ-पर्वका आयोजन होता है। कुम्भ-योगमें स्नान करनेका अप्रतिम माहात्म्य शास्त्रोंमें बताया गया है—

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव
रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून्।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा
गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः॥

(ऋग्वेद १०।८९।७)

'कुम्भ-पर्वमें जानेवाला मनुष्य स्वयं दान-होमादि सत्कर्मोंके फलस्वरूप अपने पापोंको वैसे ही नष्ट करता है जैसे कुठार वनको काट देता है। जिस प्रकार गंगा नदी अपने तटोंको काटती हुई प्रवाहित होती है, उसी प्रकार कुम्भ-पर्व मनुष्यके पूर्वसंचित कर्मोंसे प्राप्त हुए शारीरिक पापोंको नष्ट करता है और नूतन (कच्चे) घड़ेकी तरह बादलको नष्ट-भ्रष्टकर संसारमें सुवृष्टि प्रदान करता है।'

तान्येव यः पुमान् योगे सोऽमृतत्वाय कल्पते।
देवा नमन्ति तत्रस्थान् यथा रंका धनाधिपान्॥

(स्कन्दपुराण)

'जो मनुष्य कुम्भ-योगमें स्नान करता है, वह अमृतत्व (मुक्ति)-की प्राप्ति करता है। जिस प्रकार दरिद्र मनुष्य सम्पत्तिशालीको नम्रतासे अभिवादन करता है, उसी प्रकार कुम्भ-पर्वमें स्नान करनेवाले मनुष्यको देवगण नमस्कार करते हैं।'

हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चारों स्थानोंमें ही क्रमशः बारह-बारह वर्षपर पूर्णकुम्भका मेला लगता है, जबकि हरिद्वार तथा प्रयागमें अर्धकुम्भ-पर्व भी मनाया जाता है, किंतु यह अर्धकुम्भ-पर्व उज्जैन और नासिकमें नहीं होता। अर्धकुम्भ पर्वका माहात्म्य भी कुम्भपर्वके समान ही माना जाता है।

तीर्थराज प्रयागमें होनेवाले कुम्भपर्वविषयक कतिपय शास्त्रीय वचनोंको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मेषराशिं गते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावास्या तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥

(स्कन्दपुराण)

'जिस समय बृहस्पति मेष राशिपर स्थित हों तथा चन्द्रमा और सूर्य मकर राशिपर हों तो उस समय तीर्थराज प्रयागमें कुम्भ-योग होता है।'

सहस्रं कार्तिके स्नानं माघे स्नानशतानि च।
वैशाखे नर्मदा कोटिः कुम्भस्नानेन तत्फलम्॥

(स्कन्दपुराण)

'कार्तिक महीनेमें एक हजार बार [गंगामें] स्नान करनेसे, माघमें सौ बार [गंगामें] स्नान करनेसे और वैशाखमें करोड़ बार नर्मदामें स्नान करनेसे जो फल होता है, वह प्रयागमें कुम्भ-पर्वपर केवल एक ही बार स्नान करनेसे प्राप्त होता है।'

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
लक्षं प्रदक्षिणा भूमेः कुम्भस्नानेन तत्फलम्॥

(विष्णुपुराण)

'हजार अश्वमेध-यज्ञ करनेसे, सौ वाजपेय-यज्ञ करनेसे और लाख बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल केवल प्रयागके कुम्भस्नानसे प्राप्त होता है।

प्रयागमें कुम्भके तीन स्नान होते हैं। यहाँ कुम्भका प्रथम स्नान मकरसंक्रान्ति (मेषराशिपर बृहस्पतिका संयोग होने)-से प्रारम्भ होता है। द्वितीय स्नान (प्रधान स्नान) माघ अमावस्या (मौनी अमावस्या)-को होता है। तृतीय स्नान माघ शुक्ल पंचमी (वसन्तपंचमी)-को होता है।

विलक्षण प्रेम और विलक्षण कृपा

[एक सुपात्र मुसलमान बालकका विलक्षण प्रेम और श्रीराधारानीकी विलक्षण कृपा]

(श्रीप्रमोदकुमारजी चट्टोपाध्याय)

प्रेमयोगिनी मीराँने कितने दर्दभरे स्वरमें गाया था—***'हे री मैं तो दरद दिवाणी, मेरो दरद न जाणै कोय।'*** वह तो श्रीकृष्णके प्रेममें पागल थी, विरह-व्यथासे व्याकुल थी और उसके आत्मीय-स्वजन अपने धर्ममें मस्त थे, वे उसके दर्दके मर्मको भला कैसे समझ सकते थे? उन्हें तो उसकी सारी हरकत ही उलटी दीखती थी और वे उसके साथ, उसके 'उलटे जीवन'को सुधारनेके लिये उसपर जुल्म ढाते थे। इसीलिये न उसने घबराकर भक्त तुलसीदाससे राय पूछी थी कि ऐसी दशामें उसे क्या करना चाहिये और उस सच्चे ज्ञानीने कितना नि:संकोच लिख भेजा था कि—***'जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥'*** सनेही होनेसे क्या, यदि उसे भगवान्‌पर प्रेम नहीं, जो प्रेम-रससे अनभिज्ञ होकर प्रेमीपर अत्याचार करता है, उस एकको ही करोड़ वैरी मानकर त्याग देना चाहिये। और उपाय भी क्या है? भला ऐसे प्रेमहीन सनेहियोंके स्थूल धर्मकी रक्षाके लिये कोई भगवद्भक्त अपने अमर धर्मका कैसे त्याग कर सकता है?

वास्तवमें इस तरहके मीराँ-जैसे सच्चे भक्त दुर्लभ ही होते हैं और ऐसे भक्तोंके पावन दर्शन, चरित्र-श्रवण सब देशों और सब कालोंमें मंगलकारी होते हैं। सौभाग्यसे मुझे एक बार ऐसे मुसलमान बालक भक्तके दर्शन अनायास कुछ क्षणके लिये प्राप्त हुए थे और वे क्षण मेरे जीवनके अमूल्य क्षणोंमें हैं। उन्हीं पावन क्षणोंकी कुछ झाँकी मैं अपने पाठकोंको भी देना चाहता हूँ।

अपने जीवनके प्रारम्भिक कालमें अवश्य कुछ समझ हो जानेके बाद मैं एक तीव्र आवेग लेकर घरसे बाहर निकल पड़ा था। इच्छा थी कि सारे भारतमें घूम-घूमकर साधु-महात्माओंके दर्शन करूँगा और यदि किसीकी कृपा प्राप्त हो सकी तो अपने जीवनको धन्य बनाऊँगा। उन्हीं भ्रमणकालीन दिनोंकी बात है। कार्तिक मास था, प्रथम शीतका मधुर स्पर्श आरम्भ हो गया था। प्रफुल्ल मन, स्वस्थ शरीर और हृदयमें उद्दाम आशा लेकर उत्तरप्रदेशके तीर्थोंका भ्रमण कर रहा था। घूमते-फिरते मथुरा आया और सोचा कि दो-एक दिन यहाँ विश्राम करके वृन्दावन चलूँगा।

पथकी सारी धूल पावन यमुनाके जलमें धोकर मानो यात्राकी सारी थकानसे मुक्त हो गया—प्रसन्नचित्त होकर चुपचाप विश्रामघाटपर बैठ गया। वहीं सन्ध्याके समय भगवान्‌की आरती देखी। यह आरती मैंने पहले भी देखी थी, परंतु आज....—मानो उसमें कुछ नयापन था—सात्त्विक उपासनाके साथ मानो अपूर्व शिल्प-चातुरीका समावेश था। ऐसा मैंने भारतके और किसी तीर्थमें नहीं देखा। बैठे-बैठे एक अपूर्व तन्मयताका अनुभव कर रहा था।

भीड़ धीरे-धीरे कम होने लगी। कितने ही नर-नारी आये और चले गये। कुछ प्रौढ़ व्यक्ति घाटकी सीढ़ियोंपर बैठकर सन्ध्या-वन्दन करनेके बाद आचमन करके चले गये। कितने ही देशी-विदेशी आये और चले गये, कितनी ही मथुरावासिनी मधुरहासिनी रमणियाँ अपने आकर्षक स्वरका आनन्द बिखेरती हुई निकल गयीं। अब मैं भी वहाँसे चलनेके लिये तैयार हुआ।

घाटके पास ही रास्तेमें एक मुसलमान खड़ा था, एकदम साधारण नहीं, कुछ-कुछ भद्र और आधुनिक ही प्रतीत होता था। उसकी कच्ची-पक्की मूँछ-दाढ़ी वैसी ही छोटी-छोटी छँटी हुई थी जैसे प्राय: उत्तर भारतके मुसलमानोंकी देखी जाती है। धूपमें तपा हुआ उसका मुख लालिमासे उज्ज्वल था, छोटी-छोटी आँखोंकी दृष्टि काफी पैनी थी। उसके हाव-भावसे ऐसा लगता था मानो कोई खोयी हुई चीज खोज रहा हो। देखा, मुझपर भी उसकी दृष्टि निबद्ध है। उससे आँख मिलते ही मेरे अन्दर कौतूहल जग उठा। धीरे-धीरे आगे

बढ़कर मैं उसके सामने खड़ा हो गया। प्रौढ़ वयस् होनेपर भी उसके चेहरेपर एक भव्यता विद्यमान थी।

वही तीक्ष्ण दृष्टि,—सिरसे पैरतक मेरी ओर निहारकर, अपने मुँहपर हाथ रखकर वह कई बार खाँसा; फिर मेरी ओर देखते हुए ऐसे खड़ा हो गया मानो मुझे ही उससे बात करनी हो, गरज मेरी हो। मैंने भी बस आरम्भ कर दिया, हिन्दीमें उससे पूछा, 'लगता है आप यहाँ किसीको खोज रहे हैं।' वह बोला—'जी हाँ' और इतना कहकर वह चुप हो गया। कुछ देर मौन रहकर उसने मुझसे पूछा—'आप बंगाली हैं?' उसके मुँहसे 'बंगाली' शब्द ऐसा कटु एवं विद्वेषपूर्ण प्रतीत हुआ कि सुनते ही मेरा अन्त:करण विषाक्त हो गया, बड़ी बेचैनीका अनुभव हुआ, फिर भी मैंने धीरेसे उत्तर दे दिया—'जी हाँ।'

वह बोला—'शायद मथुरा-वृन्दावन तीरथ-जात्राके लिये आये हैं?' इसका भी उत्तर दे दिया। वह फिर बोला—'कलकत्तेसे आये हैं?' हामी भर ली। मन-ही-मन सन्देह हुआ, कहीं पुलिसका आदमी तो नहीं है? इससे पूर्व मुझे इस बातका काफी अनुभव हो चुका था कि बंग-सन्तानकी रिहाई विदेशमें भी नहीं होती—पुलिस पीछा करती ही रहती है।

वह कुछ देर मौन रहकर एक बार चारों ओर ताका और फिर कुछ भाव-भंगी करता हुआ नरम स्वरमें बोला—'साधुजी! उस बड़े फाटकके पास ही मेरा गरीबखाना है, आपसे कुछ बात करनी है, मिहरबानी करके एक बार वहाँ चलेंगे क्या?'

'गरीबखाना'—कितना विनयपूर्ण वचन है! सोचा, शायद दौलतखाना ही हो। बड़ा फाटक नजदीक ही था, इसलिये थोड़े समयमें ही उसके दौलतखानेपर जाकर जो दृश्य देखा उससे और आगे पैर बढ़ानेका उत्साह न रहा। मनुष्यके चेहरे और वेशभूषाके साथ उसके निवासस्थानका सम्बन्ध कितना विपरीत हो सकता है, वह विषमता कितनी गहरी हो सकती है यह स्वयं आँखोंसे देखे बिना कोई विश्वास नहीं कर सकता, विश्वास करनेकी बात ही नहीं। पर उस बातको जाने दें, अब मेरे मनमें कुछ खलबली मची, बोला—'यमुना-तीरपर ही क्यों न चलें, वहीं कहीं बैठकर हम बातचीत कर लेंगे।' वह मेरे मनकी बात समझ गया और तुरन्त राजी हो गया। हम फिर यमुना-तटपर आ गये और एक छत्तेदार चबूतरेपर बैठ गये। रेलका पुल निकट ही था, गाड़ी उसपरसे होती हुई चली गयी, वह व्यक्ति उसी ओर ताक रहा था। मेरा चित्त अब अस्थिर हो उठा। मैं बोला, 'अब कहें न, जो कुछ कहना हो।'

'हाँ कहता हूँ साधूजी! मेरा एक लड़का है, वही एकमात्र लड़का है मेरा। आज दस-बारह दिनसे लापता है।' यह सुनते ही मैं बोल उठा, 'पर मैं क्या कर सकता हूँ?' वह व्यक्ति अब मानो कुछ कातर स्वरमें बोला, 'आप सब बात सुन लें, फिर उसके बाद जो इच्छा हो, कहें।' और वह अपनी कहानी सुनाने लगा।

'मेरे लड़केकी कहानी बड़ी ही अजीब है। उसका स्वभाव बड़ा विचित्र था। हमलोग मुसलमान हैं, आप नहीं जान सकते, हम बादशाहकी जात हैं—सुलतान आलमके अमलसे ही दिल्लीमें हमारा बड़ा रोब-दाब रहा है, एक वक्त सारा हिन्दोस्तान ही हमारे हुक्मपर चलता था। डाफराइन लाटसे हम जागीर लेकर आगरेमें बस गये—अखबारमें यह सब छपे हुए हरफोंमें दर्ज है।'

मेरे लिये यह असह्य हो गया। इस सबसे छुटकारा पानेकी आशासे मैं व्याकुल होकर प्रार्थनासूचक स्वरमें बोला—'दुहाई शाहजादा साहब, अब अपने लड़केकी बात—।'

'हाँ, हाँ, वह कहता हूँ। लेकिन ठाकुरजी! हमारे खानदानका किस्सा जाने बिना आप यह कैसे समझ सकेंगे कि कितने बड़े घरका लड़का होकर उसने कितनी बड़ी अहमकी की है? इसीलिये पहले—।' मैंने हाथ जोड़कर कहा, 'अब यदि असली बातपर आ जायँ⋯।'

तब उसने फिर कहा—'हाँ, वही कहता हूँ⋯हमारा जो मजहब है, एक दिन सारी दुनियाको उसे कबूल करना होगा, नहीं तो किसीका उद्धार नहीं हो सकता। हम वही मुसलमान हैं, हिन्दू हमारे लिये काफिर हैं। हर एक हिन्दू, वह चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, हमारे

लिये बस काफिर ही है। हमारे मुल्ला उनके सायेसे भी अलग रहते हैं। खुदाकी मिहरबानीवाले हमारे इस मजहबकी खासियत समझकर यदि कोई काफिर भी इस मजहबको कबूल करे तो हम उसे अपने-जैसा ही बना देंगे, लेकिन काफिरके साथ हमारा दोस्ताना नहीं चल सकता····।'

असह्य हो गया! किस मुसीबतमें आ फँसा! पर उपाय भी क्या, सुनना ही पड़ेगा। वह तो अब अपने मजहबकी महिमा गानेमें डूब गया था और अब मुझे भी उसके लड़केकी अद्भुत कथा सुननेका कोई कौतूहल नहीं था। कुछ देर बाद, जब और न सह सका, तो झट बोल उठा—'अच्छा, आप बैठिये, मैं तो अब घर चला।' और इतना कहकर एकाएक खड़ा होकर उसे सलाम ठोंक दिया। वह तो अवाक् हो मेरी ओर देखने लगा मानो मैंने कोई बड़ा विकट अभिनय कर डाला हो। वह नरम स्वरमें बोला—'जरा बैठिये, अब महज लड़केकी ही बात कहूँगा।'

बाध्य होकर फिर बैठ गया। उसने आरम्भ किया—'आप क्या जानें, हमारे पाक मजहबके साथ हिन्दुओंके बुतपरस्त मजहबकी कोई बराबरी ही नहीं हो सकती। हमारा ईमान कुरानशरीफमें ही है। उसमें लिखा है कि हिन्दू कभी बहिश्तमें कदम नहीं रख सकते, उन्हें तो जहन्नुममें ही जाना पड़ेगा। इसीलिये हमारे खानदानमें लड़कोंको शुरूसे ही ऐसी तालीम दी जाती है कि उसका ईमान इस मजहबमें पक्का हो जाय।' देखा, भीतर एक प्रबल रोष उसे पीड़ित कर रहा है; पर बोले बिना भी शान्ति नहीं। मैंने व्यग्रभावसे कहा—'अब सुनाइये, अपने लड़केकी बात।'

'हाँ, वही कह रहा हूँ। मेरा लड़का····उसका नाम है दादर रहमान, वह मकतबमें पढ़ता था, दो-तीन अंग्रेजीकी किताबें भी पढ़ा था; शान्त तबीयतका था। उसे सब प्यार करते थे। वह थोड़ा शर्मीला था, अधिक बोलता-चालता नहीं था। फिर भी हम उसे बड़े अदब-कानूनके मुताबिक रखते थे—हमारे खानदानका तरीका जो यही ठहरा। मुझे यकीन था कि वह एक दिन पक्का मुसलमान होगा। इस वक्त उसकी उम्र तकरीबन सोलह सालकी होगी। एक दिन उसने अपनी माँसे एक बेढब सवाल कर दिया। क्या कहा उसने, जानते हैं?'—इतना कहकर आँखें फाड़-फाड़कर वह मेरे मुँहकी ओर ताकने लगा, जैसे यह देख रहा हो कि मैं भी अवाक् हो रहा हूँ या नहीं। मैंने कहा, 'मैं कैसे जान सकता हूँ? मैं तो उस समय वहाँ उपस्थित नहीं था?'

'उसने क्या कहा, जानते हैं?' वह बोला—'अम्मी! तुमलोग हिन्दुओंको काफिर क्यों कहती हो? बोलो, आज मुझे बताना ही होगा।' माँ तो हुई औरतकी जाति, वह कुछ भी बोल न सकी। उसने रातको मुझे बताया कि लड़केने यह बात पूछी थी। सुनते ही मेरे बदनमें आग लग गयी; सीधे उसका कान पकड़ बाहर खींच लाया और तड़ातड़ बेंत लगाते-लगाते बोला, 'जो हमारे पाक इस्लाम मजहबपर ईमान नहीं लाते, बुतोंको पूजते हैं, उन्हें काफिर कहते हैं, यह कुरानमें लिखा है, तुम फिर कभी यह बात पूछोगे? हिन्दुओंका नाम लोगे?' उसके मुँहसे एक लफ्ज न निकला; मेरी बातका कोई जवाब ही उसने नहीं दिया। 'मेरी साँस फूल गयी।' कहकर वह हाँफने लगा। फिर बोला, 'हमें खुदाताल्लाने पैदा किया है' हमारे लड़कोंके मुँहसे वैसी बातें क्यों?

'खैर उसे जाने दें। उस दिनसे लड़केने फिर कोई बात नहीं पूछी। उसने एक संजीदा रवैया अख्तियार कर लिया। किसीसे कुछ न बोलते हुए चुपचाप दिन गुजारने लगा। मैंने सोचा; सख्त सलूक बरतनेसे उसे अक्ल आ गयी है।'

'कासिम नामका मेरा एक भतीजा है, उसीके साथ पढ़ता था। कासिम अभीसे पाँच बार नमाज पढ़ता है, जो हम भी नहीं कर सकते। वह बहुत ऊँचे किस्मका मुसलमान है, पीछे वह एक नामजादा आदमी होगा, ऐसा हम सबको यकीन है। उस वाकयाके कुछ दिन बाद कासिमने एक दिन शामकी नमाजके बाद चोरी-चोरी आकर मुझसे कहा, 'चचाजान! दादर तो एकदम काफिर हो गया है। हिन्दुओंके मन्दिरमें जो देवता हैं उनकी ओर देखा करता है, दरवाजेके पास खड़ा होकर

चुपचाप देखता रहता है, फिर मुँह-ही-मुँह बुदबुदाकर न जाने क्या बोलता है, रोता भी है, उसकी आँखोंसे पानी बहने लगता है। मैंने यह सब खुद देखा है।'

मुसलमान-प्रवर जरा दम लेकर फिर बोलने लगे—'कासिमके मुँहसे यह सुनकर मैं लड़केको लेकर दरगाह शरीफ गया, जहाँ हमारे मुल्ला, हाफिज, हाकिम रहते हैं। उन्होंने कासिमसे सब बातें कुरेद-कुरेदकर पूछीं। जो-जो उसने ठीक अपनी आँखोंसे देखा था, सब कुछ कासिमने बताया। उसने कहा, परसों जब हम एक साथ मकतबसे आ रहे थे तो उसने मुझसे कहा कि तुम घर जाओ, मैं जरा ठहरकर आऊँगा। मैं जानता था कि रास्तेमें जो काफिर हिन्दुओंका मन्दिर है, वहीं वह जायेगा और इसीलिये मुझे भगाना चाहता है। मैंने कहा कि 'मैं तुझे वहाँ नहीं जाने दूँगा, वहाँ जानेसे तू काफिर हो जायगा।' 'यह सुनकर वह बोला, 'भाई! तूने उस मन्दिरके देवता किशनजी और उनकी बीवीको देखा है?' मैंने कहा, 'वह सब क्या हमारे देखनेकी चीज है रे? हम तो ईमानदार पक्के मुसलमान हैं।' दादरने मेरी बातपर जरा भी कान नहीं दिया और ही बहुत-सी बातें बोलने लगा। अन्तमें बोला, 'खुदाने ही तो सबको पैदा किया है, फिर उनकी दुनियामें हमें जो अच्छा लगेगा, उसे हम क्यों नहीं देखेंगे? इसमें तो किसीका कोई नुकसान नहीं। इसमें गुनाह क्या है, अगर मुझे अच्छा लगता है तो देखनेमें कसूर क्या है?'

'उसकी यह बात सुनकर मुझे गुस्सा आ गया। मैंने दादरसे कहा, 'तू तो जरूर काफिर हो गया है। हमारा अल्लाह तुझपर खफा होगा। तुझे काफिरोंके साथ जहन्नुममें भेजेगा।' मेरी बातका उसपर कोई असर नहीं हुआ। सिर्फ इतना बोला, 'खुदा तो सब कुछ देखता है; मैंने अगर कोई कसूर नहीं किया तो वह क्यों मेरे ऊपर खफा होगा?' हाँ, उसने इतना और कहा था कि 'क्या हमारे-जैसे छोटे कमजोर आदमियोंकी तरह अल्लाहमें भी गुस्सा-गिला है? मुहब्बत हुए बिना क्या अल्लाहके पास जाया जा सकता है? जहाँ मुहब्बत है, वहाँ गुस्सा कभी रह सकता है?'

हाफिजने ध्यानसे सब कहानी सुनी और वह बोले—'ज़रूर काफिर पण्डितोंके लड़के इसके पीछे लगे हैं, और यह सब काफिरी सीख है।' कासिम बोला, 'पण्डितोंके लड़कोंके साथ तो उसे मैंने कभी नहीं देखा। इसके सिवा हम तो कभी उनके साथ नहीं मिलते-जुलते और न वे ही हमारे साथ मिलते-जुलते हैं।' यह सब सुनकर हाफिज मुल्ला फरूखसियारके साथ मशविरा करने गये। हम घर चले आये। आकर देखा, दादर घरमें गुमसुम बैठा था। उसका चेहरा देखकर ऐसा बिल्कुल नहीं लगता था कि उसके मनमें कोई पाप या गुनाह है। यह इतना शैतान है, अपना मतलब इस तरह छिपाकर रखता है! कौन उसका सलाहकार है, कौन काफिरका बच्चा उसे यह सब सिखाता-पढ़ाता है, यह सब उसके मुँहसे निकलवानेके लिये उस रात मैंने उसे इतना मारा कि वह बेहोश हो गया लेकिन फिर भी उसने कुछ भी नहीं बताया।

यहाँतक सुनते-सुनते मन ग्लानिसे भर गया। इनकी अज्ञ बुद्धि कितनी नीचे जा सकती है, कैसे ये सत्य वस्तुको दबाकर मिथ्याकी इमारत खड़ी कर सकते हैं—यही सब सोचकर मनमें बड़ी उदासी, तिक्तता और विरक्ति भर गयी। सोचा, बालकके दैवानुग्रहजनित प्रेम-धर्मके विषयमें उसका पिता या समाज अनभिज्ञ है। सहज दृष्टिसे जो वस्तु देखी जा सकती है, उसे वे नहीं देखेंगे; देखेंगे उसे, जो वास्तवमें नहीं है; अपनी-अपनी ईर्ष्या-द्वेषजनित कल्पनाकी आँखोंसे। मैं समझ गया कि उन्हें यह सन्देह है कि किसी पण्डित या पण्डितोंके लड़कोंने उनके धर्म-प्रवण मुसलमान बालकको सरल पाकर बहकाने और हिन्दू बनानेकी चेष्टा की है। एक बात कहे बिना न रह सका, यद्यपि जानता था कि वह विफल ही होगी। पूछा—'मिर्जासाहब, आपकी आयु तो पचासके ऊपर होगी।'

'हाँ, इस रमजानमें पचपन हो गयी है।'

'अच्छा, तो क्या आपने कभी ऐसा देखा है कि किसी हिन्दूने किसी मुसलमानको हिन्दू बनानेकी चेष्टा की है?'

वह सिर हिलाकर बोला, 'पहले तो कभी नहीं देखा था, लेकिन अब 'शुद्धि' जो शुरू हो गयी है।'

'वह तो असली मुसलमानोंके लिये नहीं है, बल्कि जो पहले हिन्दू थे और किसी कारणसे जाति या समाजसे बाहर हो गये थे या मुसलमान हो गये थे, उनके लिये है। उनमेंसे यदि कोई फिर अपने धर्ममें आना चाहे तो····।'

'सो तो ठीक है, बाहरसे ऐसी बातें बनाकर ही लोगोंको बतायी जाती हैं। अन्दर-अन्दर उनका क्या मतलब है, यह कौन कह सकता है? हाँ, तो भी सच्चे मुसलमानको तो वे नहीं ही बदल सकेंगे, यह ठीक ही है। अभी छोटे-छोटे लड़कोंके ऊपर, जिनका दिल हलका है, आजमाईश करके देख रहे हैं शायद····।'

इसके ऊपर कुछ कहनेकी गुंजायश तो नहीं थी, फिर भी मैंने कहा—'मिर्जासाहब! आपने क्या नहीं सुना है कि धर्मान्तर ग्रहण करनेमें हिन्दू विश्वास नहीं करते? हिन्दुओंकी तो धारणा ही यह है कि हिन्दू होकर जन्म लिये बिना हिन्दू नहीं हुआ जा सकता।'

मिर्जासाहब बोले—'हाँ, वह तो सुना है, लेकिन····।'

यह 'लेकिन' ही तो सर्वनाशका कारण होता है। अब देखा कि वे कुछ आर्द्र हो गये हैं। करुण नेत्रोंसे ताकते हुए बोले, 'उसके बादकी बात भी जरा सुन लीजिये। जिस दिन वह लापता हुआ, उससे दो-एक दिन पहलेसे वह न जाने कैसा हो गया था। उसकी माँने मुझसे कहा कि 'तुम लड़केकी तरफ देखते नहीं? मुझे लगता है कि किसी देवताने उसे धर दबाया है, नहीं तो उसकी आँखें हर वक्त लाल क्यों रहती हैं? ऐसा लगता है मानो उनमें पानी भरा हुआ है। किसीके साथ बात करते समय उसकी आँखोंसे झर-झर पानी झरने लगता है। कोई उसके पास जाय तो वह वहाँसे दूर सरक जाता है, हमेशा अकेलेमें ही रहना चाहता है। यह सब देखकर मुझे तो डर लगता है।' उसकी माँकी यह बात सुनकर मैं उसी रात लालटेन लेकर उसके बिस्तरको देखने गया, देखा, वह वहाँ था ही नहीं। कहाँ गया?××× और वह एक ही जगह रहते थे। देखा, ××× वहीं सोया हुआ था। उसे आवाज देकर उठाया और पूछा तो उसने कुछ सोचकर कहा कि मैं कुछ नहीं जानता, न जाने कब उठकर चला गया। ऐसा तो वह रोज ही करता है। मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गया तो देखा कि एक कुएँकी मेड़पर अँधेरेमें चुपचाप बैठा है। मैंने पकड़कर उसे बेदम मारना शुरू कर दिया। मारकी चोटसे भूततक भाग जाते हैं, यह हम सब खूब अच्छी तरह जानते हैं। किंतु इतनी सख्त चोटोंके पड़नेपर भी उसपर कुछ असर न हुआ, वह शैतान शैतान ही बना रहा। हैरानीकी बात यह कि इतनी मार खाकर उसने चूँ तक न किया, गुस्सेकी एक मामूली-सी बात भी उसके मुँहसे नहीं निकली। उसके बाद जब एक दिन मैं अपनी बीवीके कहनेसे मौलालीसे एक ओझाको बुला लाया तो फिर वह भाग गया। जानेसे पहले××× कह गया कि 'मेरी उम्मीद छोड़ दो, लाड़ली मुझे बुलाती है, मैं एकदम काफिर हो गया हूँ।'

'उस दिनसे उसका कोई पता नहीं; मैंने लेकिन उम्मीद बिल्कुल नहीं छोड़ी है। आज दो हफ्ते होनेको आये, रोज एक बार इन सब जगहोंपर घूम-घूमकर उसे ढूँढ़ता हूँ। एक इतने बड़े घरका लड़का आखिरमें काफिर हो जाय यह कैसे सहा जा सकता है?'

मैंने पूछा—'तो आप मुझे क्या करनेको कहते हैं?'

मिर्जासाहब बोले—'मेरा वही एक लड़का है, मैं अब भी उसे लौटा लाना चाहता हूँ। आप जब घाटपर बैठे थे, तभीसे आपको देख रहा था। उसके बाद जब आप उठकर आये तो ऐसा लगा मानो आपके जरिये उसका पता लग सकता है।'

'परंतु आपका लड़का तो अपनी इच्छासे काफिर हो ही गया है, इतनी यातना मिलनेपर भी जब वह बदल नहीं सका तो उसका पता मिलनेपर भी क्या आप उसे घर ले जा सकेंगे?'

उत्तरमें उसने कहा—'वह अभी नादान बच्चा है, बिना समझे-बूझे एक काम कर बैठा है। उसे उसकी गलती समझाऊँगा, हमारी दरगाहोंमें जो बड़े-बड़े

फकीर-औलिया हैं, उनके पास ले जाऊँगा, उनकी शक्तिके असरसे उसका रवैया बदल जायगा, मुझे पक्का यकीन है।'

'अच्छा, यदि कभी कहीं उसका पता मिल गया तो मैं आपको खबर कर दूँगा।' उसने मुझे अपना पता दे दिया। अगले दिन मैं मथुरासे चल पड़ा।

× × ×

वृन्दावन मेरा सुपरिचित और अति प्रिय स्थान है। अनेक बार वहाँ आ-जा चुका हूँ। राधाबागके ब्रह्मचारी-आश्रममें ही मैं बराबर ठहरा करता हूँ। वहाँ स्वामी केशवानन्दके आश्रममें मैंने लम्बा समय बिताया है। वहाँ इस बार भी ठहरा। दूसरे दिन बादलोंसे भरी साँझके समय मैं घूमनेके लिये यमुनातटकी ओर गया। वहाँ वनचारी साधुओंके आश्रम हैं। उनके आसपास ही घूम रहा था। सामने यमुना फैली हुई थी, उसके उस पार बहुत दूरतक उसकी तटभूमि फैली थी, बीच-बीचमें दो-एक पेड़ थे, उसके पीछे सुदूर प्रान्ततक वृक्ष-श्रेणीकी गाढ़ नीलाभ रेखा दिग्दिगन्ततक व्याप्त हो आकाशके साथ मिल गयी थी।

जहाँ बैठा था, उससे कुछ दूरीपर तीन अपूर्व विशाल वृक्ष खड़े थे। सुन्दर सुपरिष्कृत, तृणहीन भूमिपर लम्बे-लम्बे तीन वृक्षोंके मूल इस प्रकार समान अन्तरपर विद्यमान थे कि उनके बीच एक सुन्दर त्रिकोण क्षेत्रकी सृष्टि हो गयी थी। प्रकृतिद्वारा रचित ऐसा क्षेत्र प्राय: देखनेको नहीं मिलता, वह मानो किसी योगीका आसन हो। वह क्षेत्र उस समय खाली नहीं था। देखा, उसके भीतर कौपीनधारी एक मूर्ति अद्भुत भंगिमाके साथ बैठी है। वह भंगिमा ऐसी चित्ताकर्षक थी कि मेरी दृष्टि बलपूर्वक उसी ओर खिंची रह गयी। प्रथम दृष्टिमें ही ऐसा लगा कि वह मूर्ति किसी वैष्णव एवं योगीकी है, उसका बैठनेका ढंग योगी-जैसा ही था।

मेरी प्रकृति बचपनसे ही कुछ ऐसी बन गयी है कि किसी साधुकी मूर्ति सामने आते ही उधर सहज ही आकर्षित हो जाती है। विशेषकर शान्त-धीर प्रकृतिका कोई साधु हो तब तो उससे परिचय प्राप्त करनेके लिये मन-प्राण अधीर हो उठते हैं। लगता है मानो वे मेरे जन्म-जन्मान्तरके अपने परिचित हों। इसी कारण इस बार भी मैं अपनी जगहपर स्थिर न बैठ सका, उठ पड़ा और निमिषमात्रमें उस स्थानपर जा पहुँचा। वहाँ देखी एक अद्भुत बालक-मूर्ति—स्वास्थ्यपूर्ण, सुडौल शरीर, उज्ज्वल गौर वर्ण, कौपीनमात्र वस्त्र। लगा जैसे व्यासपुत्र परमहंस शुकदेवकी ही मूर्ति देख रहा होऊँ। वह रूप देखकर मैं निर्वाक्, अपलक हो गया। चित्रकारपर रूपका प्रभाव बड़ा ही तीव्र होता है, यह सभी जानते हैं। रूप बाह्य होनेपर भी अन्तरकी सम्पदाने उस रूपको ईश्वरीय लावण्यसे मण्डित कर रखा था; वह लावण्य और कुछ नहीं, ज्योतिका ही दूसरा नाम है। वास्तवमें यह ज्योति ही चित्रकारके लिये काम्य है।

उन दिनों कुछ ठंड थी, किंतु बालकके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था, शायद उसे इसकी आवश्यकता भी नहीं थी; किंतु मेरी बुद्धि तो स्थूल देहगत बुद्धि ठहरी, उसका शीतबोध अपने ऊपर आरोपितकर अपने शरीरका गरम कपड़ा उसे ओढ़ा दिया। उसकी अपलक दृष्टि यमुनाकी ओर निबद्ध थी, मुँहमें कोई शब्द नहीं। सोचा, वनचारी वैरागियोंका कोई बालक भक्त होगा। साधु-सम्प्रदायमें बालक ब्रह्मचारी बहुतेरे देखे हैं, पर ऐसी आँखें बहुत कम देखनेमें आती हैं। पद्मपलाश नेत्रोंकी बात हम सबने सुनी होगी—वे नेत्र अरुणवर्ण थे, उनमें जल झलमल कर रहा था, मानो अभी-अभी झर पड़ेगा। ऐसी किशोर साधुमूर्ति मैंने जीवनमें प्रथम बार ही देखी थी।

मथुरासे आनेके बाद अबतक उस भद्र मुसलमानके पुत्र दादर रहमानकी बात ही मेरे मनमें बार-बार आया करती थी। उसके अन्तरमें प्रेम-धर्मकी स्फुरणाकी बात, उसका बिना क्रोध किये इतना अत्याचार सहना, फिर दृढ़-संकल्प बालकका गृहत्याग, जाने कहाँ अन्तर्धान हो जाना आदि-आदि बातें बार-बार आकर मनमें हलचल पैदा करती थीं। किंतु जैसे ही इस मूर्तिको सम्मुख देखा, वे सब बातें काफूर हो गयीं, इसी मूर्तिपर चित्त तन्मय हो गया, प्रश्न करूँ या न करूँ यह

सोचनेकी भी प्रवृत्ति नहीं रही। बैठे-बैठे उसे ही देखनेमें मग्न हो गया।

इसी समय एक व्रजवासिनी घाघरा, चोली, ओढ़नी सब कुछ नीले रंगका धारण किये हुए आ उपस्थित हुई। उसके एक हाथमें एक थाल कपड़ेसे ढका था, निश्चय ही उसमें कुछ खाद्य पदार्थ था; दूसरे हाथमें एक साफ झकझक करते हुए लोटेमें कुछ पेय था। अति कमनीय था उसका मुखमण्डल; अपूर्व भाव-भंगीके साथ खड़ी होकर उसने धीरे-धीरे हाथकी चीजें उस किशोरके सामने रख दीं। वह बोली—'दुलाल मेरे, अब कुछ खा तो लो, मैं अभी तुम्हें खिलाकर घर जाऊँगी, फिर वहाँका काम समाप्त कर सन्ध्या-समय पुनः यहाँ आऊँगी और तुम्हें वहाँ ले चलूँगी।'

यह सब मधुर व्रजभाषामें कहकर वह उसके मुखकी ओर स्नेहभरी आँखोंसे देखने लगी। मैं वहाँ एक अपरिचित व्यक्ति भी उपस्थित हूँ—इस ओर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं था; मानो उसके सामने उस किशोरके सिवा और कोई न हो। उसकी बातें इतनी मधुर थीं कि भाषाके साथ कण्ठ-स्वर मिलकर एक अपूर्व संगीतकी सृष्टि कर रहा था।

साधुमें किंतु कोई भावान्तर नहीं हुआ; वह जैसे अपलक यमुनाकी ओर ताक रहा था वैसे ही ताकता रहा। यह देख उस व्रजांगनाने व्याकुल-भावसे 'मेरे लाल' कहते हुए उसके चिबुकका स्पर्श किया। उस समय वह ध्यानस्थ किशोर तनिक चौंका, किंतु उसके नेत्र वैसे ही अपलक बने रहे।

फिर एक बार उस नवागताके मुँहकी ओर देखकर वह बोला, 'चम्पा, मुझे ले चलो, ले चलो,' और ऐसा कहते-कहते उठने लगा। जननीकी तरह स्नेहसे हाथ पकड़कर मधुर भाषामें वह व्रजनारी बोली, 'अभी नहीं मेरे लाल! अभी कुछ खा लो, उसके बाद सन्ध्या-समय आकर तुम्हें ले जाऊँगी।' इतना कहकर उसने थालमेंसे एक ग्रास उठाकर उसके मुँहमें डाल दिया। दो-एक ग्रास ही उसने खाया, बहुत चेष्टा करनेपर भी उसे और अधिक न खिलाया जा सका। अन्तमें थोड़ा-सा दूध पीकर वह किशोर फिर समाहित-चित्त होकर यमुनाके तटवर्ती वनकी ओर देखने लगा। अब मेरी ओर ताककर वह व्रजबाला विनतीभरे करुण स्वरमें बोली—'बाबा! यदि तुम कुछ देर यहीं रहो तो कोई हर्ज है?'

मेरे उत्तरसे वह प्रसन्न हुई, किंतु फिर उस बालककी ओर देखकर अश्रुपूर्ण नयनोंसे बोली—'कल ही मुझे लाड़लीजीने कह दिया था कि उसका सब समय ध्यान चलता रहता है, होश नहीं रहता, उसे खिला दो, नहीं तो उसका शरीर नहीं टिकेगा। दस-बारह दिनसे कुछ नहीं खाया, थोड़ा-सा दूध, बस। इससे क्या शरीर रह सकता है?' उसके बाद चकित हरिणीकी तरह घूमकर उसने किशोरको देखा, कहा—'क्या करूँ? अच्छा मेरे गोपाल! तुम यहीं रहो। मैं घर जाती हूँ। मुझे तो अभी घरका काम करना है। साँझको आकर तुम्हें ले जाऊँगी। अच्छा।'

किशोर निर्वाक्, समाहितचित्त अपने आसनपर बैठा रहा। व्रजवासिनीका अन्तर्धान भी कुछ विचित्र-सा ही लगा। जब मैं उस ध्यानमग्न योगी-मूर्तिकी ओर देख रहा था, तब जरा मुड़कर उसे एक हाथमें लोटा और दूसरे हाथमें थाल लेकर जाते हुए देखा था। उसके बाद वह आगे बढ़ते-बढ़ते न जाने कहाँ विलीन हो गयी। वहाँ कोई पेड़ अथवा और किसी प्रकारकी आड़ नहीं थी, यह मुझे पूर्ण स्मरण है।

लड़की का आना-जाना और इस थोड़ेसे समयके लिये रहना—इस सबके भीतर जो कुछ देखा, उससे लगा कि वृन्दावनके यमुना-तटपर इस किशोर वैरागीको केन्द्र करके एक महान् आनन्दमय अपार्थिव खेल चल रहा है।

खैर, हमारी समझ भी कितनी। भक्तिधर्म, प्रेमधर्म आदिकी बातें साधु-महात्माओंके मुँहसे हम सुनते रहते हैं—कभी-कभी मनमें यह अभिमान भी होता है कि हम उसका तात्पर्य समझ गये, परंतु भगवान् ही जानते हैं कि उसे समझनेयोग्य यथार्थ बुद्धि हममें कितनी है! यह सब देख-समझकर ही अब यह कहता हूँ कि इस स्थानमें सब कुछ अद्भुत है! इस बार मथुरामें पदार्पण करनेके

दिनसे ही सब कुछ अद्भुत, अपूर्व और अप्रत्याशित अनुभव हो रहा था। यह सब ऐसा आकर्षक था कि मैं स्तम्भित हो रहा था।

अब साँझ होनेको आ गयी। यमुना-तीरपर खूब हवा चल रही थी। परंतु योगीकी ओर देखनेपर ऐसा लगता था मानो आकाश-बाकाशका कुछ भी कार्य उसके लिये इन्द्रियगोचर नहीं था। मेरी बात करनेकी प्रबल इच्छा हो रही थी। सोचा, क्या पूछनेपर कुछ नहीं बोलेगा? 'हरि हरि' शब्दका उच्चारण इस तरह करने लगा, जिसमें उसे सुनायी दे जाय। मेरी मनोवांछा पूर्ण हुई। उसने मेरी ओर देखा। मैंने कहा, 'बाबाजी! तुम्हें क्या कष्ट है?'

वह धीरे-धीरे बोला—'कष्ट! मुझे तो कोई कष्ट नहीं—मैं तो वृन्दावनमें हूँ—जब मैं मथुरामें अपने घरमें था, माँ, बाप, भाई सब मुझे न समझते थे, मुझे कितना मारते थे—मैं उनके मनमाफिक नहीं हो सका इसलिये·····' आह! अब उस बातकी जरूरत नहीं।' जरा रुककर फिर बोला—'वे यह नहीं जानते कि ईमान क्या चीज है, इसीसे उन्हें डर था कि मेरा ईमान बरबाद हो जायगा, मैं काफिर हो जाऊँगा, 'वही तो लाड़ली, वही जो कन्हइया' यह कहते-कहते उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू झरने लगे। तनिक रुककर फिर बोला—'कितनी मेहरबानी, गोविन्दजी शीरीराधाकी-राध-रा—आह', बस और मुँहसे कुछ न निकला, धीरे-धीरे ऐसी अवस्था हो गयी; जैसे संज्ञाशून्य होनेपर होती है। उसके नेत्र वैसे ही अपलक थे। ऐसी अस्वाभाविक आँखें थीं कि उन्हें देखकर डर लगता था। मैं बस देखे जा रहा था। थोड़ी देर बाद वह बोला—'दोस्त! तुम जानते हो राधाकुण्ड कहाँ है?' और व्याकुल भावसे मेरी ओर ताकने लगा।

मैं बोला—'जानता हूँ।' इतना सुनते ही महान् उत्साहके साथ बोला—'तो मुझे वहाँ ले चलोगे?' फिर न जाने क्या उसके मनमें आया, कुछ सोचने-जैसा भाव बनाकर तुरन्त बोल उठा—'ना, ना, वहाँ तो तुम जा ही नहीं सकते। व्रजरानीकी दया हुए बिना तो वहाँ कोई जा ही नहीं सकता, मुझे चम्पा सखी ही ले जायगी, उसके आनेमें देर है न? रुक-रुककर, धीरे-धीरे अतीव मृदु स्वरमें ही उसने पूरा किया।'

'राधाकुण्डकी कुछ बात सुनाओगे क्या? मुझे सुनकर आनन्द होता है।' मेरे मुँहसे इतना सुनते ही उसके मुख-मण्डलपर गहरे आनन्दकी पुलक, साथ ही उसके शरीरमें एक अनिर्वचनीय सिहरनकी तरंग खेल गयी। उसके चेहरेपर एक दिव्य ज्योति फूट पड़ी, जिसका वर्णन करना असम्भव है।

'क्या कहूँ? वहाँका आसमान मुहब्बतसे भरा हुआ है, मुहब्बतकी ही हवा चलती है, वह क्या कहनेकी बात है साधुजी? वहाँ सखा-सखी इस तरह मिल-जुलकर घूमते-फिरते हैं मानो आनन्दसे नाचते हों। उनकी बातें, गाना, हर एक सुर ऐसा है कि कानमें पड़ते ही बेहोश कर देता है दोस्त। थोड़ी देर भी वहाँ रहनेपर आदमी पागल हो जाता है। आ हा।'

कुछ क्षण स्थिर, समाहित रहा और फिर बोला—'वहाँ क्या रौनक है, उनका चेहरा अगर देखते सन्तजी, ऐसी मूरत है, बस, बहिश्तका रूप; उनके पाँवोंमें पायलकी आवाज कितनी तेज और मधुर है—आह! मेरे कृषनजी, मेरे······मेरी जिन्दगी कामयाब······।' इतना कह वह आगे न बोल सका। मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि अतीव मृदु स्वरमें वह फिर बोला—'वंशीपीठमें बैठे हुए उनकी बाँसुरी सुनते ही बाबाजी! वह तान······जिन्दा सुर······जैसे छातीमें पैठ जाता है। मैं जाऊँगा, वहाँ जाऊँगा······फिर वापस नहीं आऊँगा, नहीं······।' झर-झर अश्रुजल झरने लगा, वह निर्वाक् हो गया।

उसके सांनिध्यमें आनन्दकी अतिशयतासे मेरी भी चैतन्य-लोप-जैसी अवस्था हो गयी। किंतु मेरी वह अवस्था दीर्घकालतक नहीं रही। उस किशोर योगीकी प्रत्यक्षदर्शी शक्तिके लिये सब कुछ जीवन्त सत्यसे ओतप्रोत था। भला उसका इतना मर्मस्पर्शी वर्णन सुनकर भी कौन ऐसा पशु होगा, जो वहाँ स्वयं जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी तीव्र लालसासे अभिभूत न हो जाय। मेरे मनमें उत्तरोत्तर लोभ बढ़ने लगा। जैसे ही देखा कि उसकी अवस्था कुछ-कुछ बहिर्मुखी हो रही है, मैं बोल

उठा, 'बाबाजी! तुम्हारे-जैसा सौभाग्य सबको प्राप्त नहीं होता। मुझपर जरा दया करोगे? मुझे भी कुछ दिखाओगे?'

यह सुनकर उसे पूरा बाह्य ज्ञान हो गया, बोला—'आह! मेरे दोस्त! क्या मेरे लिये यह मुमकिन है? मुझमें क्या ताकत है? वहाँ तो चम्पा सखी ही तुम्हें ले जा सकती है। वही मेरी गुरु है, वही मेरी आँख है,……उसके बिना तो मैं अपने-आप किसी तरह भी नहीं जा सकूँगा।'

इसी समय दूर चम्पाकी मूर्ति दिखायी दी। देखते ही वह किशोर 'अब जाऊँगा, देखूँगा, श्यामसुन्दर, राधका रानी……' कहता-कहता मानो स्थिर हो गया, उसके नेत्र स्थिर और विस्फारित हो गये, आगे कुछ न बोल सका, एकदम भावाविष्ट अवस्था हो गयी।

इतनेमें चम्पा पास आ गयी। उसका रूप देखकर मैं स्तम्भित हो गया। यह तो वह व्रजनारी नहीं, जिसने मुझे यहाँ रहनेके लिये कहा था, वेषभूषा भी तो वह नहीं? यह तो एक अपूर्व ही वेष था, अबतक किसीको भी ऐसी पोशाकमें नहीं देखा था। सब कुछ अत्यन्त पतला, इतना हल्का मानो उड़ रहा हो, स्थूल जरा भी न हो। उसकी अपूर्व गति एक मनोहर सौन्दर्यकी सृष्टि कर रही थी।

बालकको स्पर्श करते ही वह उठ खड़ा हुआ। निर्वाक् चम्पा आगे-आगे चल रही थी और उसके पीछे-पीछे वैरागी किशोर। धीरे-धीरे मेरी आँखोंके सम्मुख ही वे दोनों अन्तर्धान हो गये। एक विलक्षण आच्छन्न भावसे जड़ीभूत होकर मैं बहुत देरतक वहीं बैठा रहा।

दूसरे दिन सन्ध्यासे कुछ पूर्व फिर वहाँ गया, जहाँ यमुना-तटपर तीन वृक्षोंके बीच त्रिकोण क्षेत्रमें उस किशोर वैरागीका आसन था। आज वह आसन शून्य था—वहाँ कोई न था। उसके बापको तो अब खबर देनेका कोई प्रश्न ही नहीं था। पहले दिनकी अपूर्व अलौकिक लीलाको ही स्मरण करता हुआ, आश्चर्यपूर्ण आनन्दकी लहरोंमें हिलोरें खाता हुआ वापस आ गया।

युगलसरकार-प्रार्थना

संसारसागरान्नाथौ पुत्रमित्रगृहाकुलात्। गोप्तारौ मे युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ॥
योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च। तत् सर्वं भवतोरद्य चरणेषु समर्पितम्॥
अहमस्म्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः। अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गतिः॥
तवास्मि राधिकाकान्त कर्मणा मनसा गिरा। कृष्णकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम॥
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ। प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टेऽपराधिनि॥
इत्येवं जपता नित्यं स्थातव्यं पद्यपञ्चकम्। अचिरादेव तद्दास्यमिच्छता मुनिसत्तम॥

श्रीलाड़िलीजी एवं लालजी! आप दोनों शरणागतवत्सल हैं। आप ही हमारे स्वामी एवं रक्षक हैं। पुत्र, मित्र, गृह आदिके बखेड़ोंसे भरे संसार-सागरसे आप ही हमें बचा सकते हैं। इस लोकमें अथवा परलोकमें जो कुछ मेरा है और जो कुछ मैं हूँ, आप दोनोंके श्रीचरणकमलोंमें समर्पित है। मैं अपराधोंका खजाना हूँ। सारे साधन मैंने छोड़ दिये हैं। मेरी स्वामिनी और स्वामी! मुझ निरुपायको एकमात्र आप दोनोंका ही सहारा है। श्रीराधारमण! मैं कर्म, मन और वाणीसे आपका हूँ। श्रीकृष्णप्राणाधिके राधिके! मैं आपका ही हूँ। बस, केवल आप दोनों ही हमारे आश्रय हैं। हे करुणामय! मैं आप दोनोंकी शरण आया हूँ। यद्यपि मैं दुष्ट और अपराधी हूँ, फिर भी आप कृपा करके मुझे यह वरदान दीजिये कि मैं निरन्तर आपकी सेवामें संलग्न रहूँ। भगवान् शंकर कहते हैं—देवर्षि नारद! जो शीघ्र-से-शीघ्र श्रीयुगलसरकारकी सेवाके लिये लालायित हों, उन्हें नित्य प्रति उपर्युक्त पञ्चपद्यात्मिका प्रार्थना करते रहना चाहिये। [**पद्मपुराण**]

संत-चरित— श्रीराधामाधवके परम त्यागी भक्त गोस्वामी रघुनाथदास

सच्चे महात्मा श्रीरघुनाथदासका जन्म आजसे लगभग चार सौ वर्ष पूर्व बंगालके श्रीकृष्णपुर नामक स्थानमें सप्तग्रामके बहुत बड़े जमींदार श्रीगोवर्धनदासके घर हुआ था। गोवर्धनदास जातिके कायस्थ थे। राज्यकी ओरसे इन्हें 'मजूमदार' उपाधि मिली हुई थी। इनकी वार्षिक आय थी बारह लाख रुपये। जिस जमानेमें एक रुपयेके कई मन चावल मिलते थे, उस जमानेके बारह लाख आजके बारह करोड़के बराबर समझिये। इतने बड़े सम्पत्तिशाली और आमदनीवाले गोवर्धनदासके एकमात्र पुत्र थे रघुनाथदास!

इनके कुलपुरोहित थे श्रीबलराम आचार्य और रघुनाथदासने उन्हींसे विद्या पढ़ी थी। एक समय श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनन्यभक्त श्रीहरिदास बलरामजीके घर आकर ठहरे थे। रघुनाथदास उस समय वहीं थे। श्रीहरिदासजीके मुखसे वहाँ उन्होंने पहले-पहले श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी महिमा सुनी और श्रीहरिदासको कीर्तन करते हुए प्रेममग्न देखा, तभीसे इनके मनमें भगवान्‌की ओर लगन लग गयी। इन्हें संसारके भोग बुरे मालूम होने लगे और भगवान्‌के विशुद्ध प्रेममार्गमें पहुँचनेके लिये इनके मनमें महाप्रभु चैतन्यके दर्शनकी प्रबल लालसा जाग उठी।

रघुनाथदास अब युवावस्थाको प्राप्त हो गये। अतुल ऐश्वर्यके एकमात्र उत्तराधिकारी थे ये, पर जिनके सामने भगवत्कृपासे भोगोंका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है, जो भोगोंकी विषमताको जान लेते हैं और भगवान्‌के मधुरतम अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यकी कल्पना जिनके मनमें परम विश्वासके साथ जम जाती है, उन्हें ये भोगबहुल घर-द्वार कैसे अच्छे लग सकते हैं? उनका मन कैसे इनमें रम सकता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(२। २२)

'इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले ये जो भोग हैं, वस्तुतः दुःखकी उत्पत्तिके स्थान और आदि-अन्तवाले हैं, अतएव अर्जुन! बुद्धिमान् पुरुष इनमें रमण नहीं करता।'

रघुनाथदासके मनमें भोगोंकी परिणाम-दुःखमयता तथा असारताका प्रत्यक्ष हो रहा था, इससे उनका जीवन सर्वथा विरक्त-सा रहने लगा। विषयीकी दृष्टिमें जो आनन्दकी वस्तु है, वही विषय-विरागीकी दृष्टिमें भयानक और त्याज्य होती है। यही दशा श्रीरघुनाथदासकी थी। पिता गोवर्धनदासने पुत्रकी ऐसी मनोदशा देखकर एक अत्यन्त सुन्दरी रूप-लावण्यमयी कन्याके साथ उनका विवाह कर दिया। शील-संकोचवश तथा अन्यमनस्क रघुनाथने विरोध नहीं किया।

कुछ समय बाद रघुनाथको पता लगा कि महाप्रभु श्रीचैतन्य शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घर पधारे हुए हैं। यह सुनते ही रघुनाथदास शान्तिपुर गये। गोवर्धनदासने पुत्रकी देख-रेख तथा उसे वापस लौटा लानेके लिये विश्वासी पुरुषोंको साथ भेजा। रघुनाथदास महाप्रभुके चरणोंमें उपस्थित हुए। महाप्रभुने उनसे बातचीत की। अभी वैराग्यमें कुछ कचाई मालूम दी, इसलिये बड़े स्नेहसे महाप्रभुने रघुनाथसे कहा—

यों मत पागल बनो, चित्त स्थिर कर जाओ घर।
क्रम-क्रमसे ही तरता है मानव भवसागर॥
उचित नहीं करना मर्कट-वैराग्य दिखाकर।
अनासक्त हो, भोगो युक्त विषय तुम जाकर॥
भीतरसे निष्ठा करो, बाहर जग व्यवहार।
तुरत तुम्हारा करेंगे, कृष्ण चरम उद्धार॥

'भैया! यों पागलपन मत करो, मन स्थिर करके घर जाओ, मनुष्य क्रम-क्रमसे ही योग्यता प्राप्त करके भवसागरसे पार हुआ करता है। लोगोंको दिखाकर मर्कट-वैराग्य नहीं करना चाहिये। अभी तुम घर लौटकर भोगोंकी आसक्ति छोड़कर उचित भोगोंका भोग करो। अन्दर भगवान्‌में निष्ठा रखो, बाहरसे यथायोग्य जगत्‌का व्यवहार करो, श्रीकृष्ण तुम्हारा शीघ्र ही उद्धार करेंगे।'

रघुनाथ घर लौट आये और महाप्रभुके आज्ञानुसार अनासक्त होकर जगत्‌का कार्य करते हुए अपनेको योग्य बनाने लगे। कुछ वर्षों बाद पानीहाटीमें श्रीनित्यानन्द प्रभुका उत्सव चल रहा था। रघुनाथने पानीहाटी आकर

उनके दर्शन किये और श्रीचैतन्य-चरणोंकी प्राप्तिके लिये उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

रघुनाथ फिर घर लौट आये, पर उनके मनमें व्याकुलता बढ़ती गयी। वे नीलाचल (पुरी) जाकर महाप्रभुके चरण प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त आतुर हो उठे। हृदयमें भयानक व्याकुलता और आँखोंसे निरन्तर बहती हुई सलिलधारा—यही उनका जीवन बन गया। भगवान् जिसको अपने पास बुलाना चाहते हैं, उसके जीवनमें स्वाभाविक ही यह स्थिति आ जाती है। वह फिर सहन नहीं कर सकता—क्षणभरका विलम्ब। अनन्य और तीव्रतम लालसा उसको केवल भगवान्‌की ओर खींच ले जाती है। उसे अपने-आप पथ प्राप्त हो जाता है।

पिताने रघुनाथका सारा भार सौंप दिया था श्रीयदुनन्दन आचार्यको। अत: रघुनाथदास एक दिन रात्रिके समय अपने आचार्यजीके पास गये और उनसे महाप्रभुके पास जानेकी आज्ञा माँगी। गुरुदेवने पता नहीं क्यों, यन्त्रचालित कठपुतलीकी भाँति कह दिया—'हाँ, जा सकते हो।' बस, फिर क्या था, रघुनाथ उसी क्षण चल दिये। अतुल ऐश्वर्य, अप्सराके समान रूपवती पत्नी, जन्मदाता पिता कोई भी उनको नहीं रोक सके।

पीछेसे लोग आकर कहीं रास्तेमें पकड़ न लें, इसलिये रघुनाथदास सीधा रास्ता छोड़कर गुप्त मार्गसे चले। कहीं घना बीहड़ जंगल, कहीं काँटे-कंकड़से भरी पगडण्डी, कहीं भयानक सिंह-बाघोंकी गर्जना, न खाना न पीना, अनजान रास्ता—किसीका कुछ भी ध्यान नहीं है। चले जा रहे हैं नींद-भूख भूलकर। लगातार बारह दिन बीहड़ पथसे पैदल चलकर रघुनाथदास नीलाचल पहुँचे और वहाँ श्रीकाशी मिश्रके घर जाकर महाप्रभुके चरण-दर्शन कर सके। महाप्रभु वहाँ भावुक मण्डलीसे घिरे थे।

महाप्रभुके श्रीचरणोंमें लकुटीकी तरह पड़कर भावाविष्ट रघुनाथने कहा—'प्रभो! मैं श्रीकृष्णको नहीं जानता, इतना ही जानता हूँ कि आपकी कृपाने ही मुझे जालसे निकाला है।' महाप्रभुके दर्शनका आनन्दरस उमड़कर रघुनाथके नेत्रोंसे पवित्र अश्रुधाराके रूपमें बह चला। उनका शरीर अचेतन होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। महाप्रभुके परिकर श्रीकृष्णनाम-कीर्तन करने लगे, तब कुछ देर बाद रघुनाथदासको चेत हो आया। महाप्रभुने उन्हें उठाकर जोरोंसे हृदयसे चिपटा लिया और श्रीस्वरूप गोस्वामीजीसे कहा—'स्वरूप! मैं रघुनाथको तुम्हारे हाथोंमें सौंप रहा हूँ।' रघुनाथकी वैराग्यमूर्ति देखकर महाप्रभु बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा—'भजनका असली आनन्द संयम और वैराग्यके द्वारा ही प्राप्त होता है और संयमी तथा सच्चे विरक्त भक्तोंको ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है—

इत उत जो धावत फिरै रसना-रस बस होय।
पावे नहिं श्रीकृष्ण कौं सिस्नोदर-पर सोय॥

तदनन्तर श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीरघुनाथदासको पाँच उपदेश दिये—

(१) (भगवच्चर्चाके सिवा) लोकचर्चा, ग्राम्य-कथा न कभी सुनना और न कभी करना।

(२) बढ़िया चीजें न खाना और बढ़िया कपड़े न पहनना।

(३) स्वयं मानरहित होकर सबको मान देना।

(४) सदा श्रीकृष्णनामका जप करना। और

(५) मानस-व्रजमें श्रीराधाकृष्णकी सेवा करना।

कभी सुनो मत लोकवार्ता कभी करो मत जान असार।
कभी न बढ़िया खाओ बढ़िया पहनो, तजो साज-शृंगार॥
स्वयं अमानी मानद होकर कृष्णनाम-जप-गान करो।
मानस व्रजमें लाल-लाड़िलीका नित पूजन-ध्यान करो॥

पाँचों ही उपदेश प्रत्येक सच्चे भक्ति-साधकके लिये आदर्श हैं। नहीं तो मनुष्य परनिन्दा-परापवाद, खाने-पहननेके पदार्थोंकी आसक्ति, प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिके अभिमान, व्यर्थ वार्तालाप तथा असार दु:खमय जगत्‌के चिन्तनमें लगकर भक्तिसाधनासे सर्वथा गिर जाता है।

उधर रघुनाथदासके पिता गोवर्द्धनदासको जब पता लगा, तब उन्होंने कुछ धन तथा आदमी नीलाचल भेज दिये। रघुनाथकी इच्छा हुई महाप्रभुको महीनेमें दो बार बुलाकर भोजन कराया जाय। इस उद्देश्यसे वे पिताके भेजे हुए धनमेंसे कुछ लेकर उसे महाप्रभुकी सेवामें लगाने लगे। परंतु कुछ ही समयमें रघुनाथ इस बातको जान गये कि महाप्रभु उनके संकोचसे सेवा स्वीकार

करते हैं; परंतु उनके मनमें इससे प्रसन्नता नहीं है—तब उन्होंने विचार किया कि 'ठीक ही तो है, अन्नसे ही मन बनता है। विषयीके अन्नसे मन मलिन होता है और मलिन मनसे श्रीकृष्णका स्मरण नहीं होता—

विषयी-जनके अन्नसे होता चित्त मलीन।
मलिन चित्त रहता सदा कृष्ण-स्मृतिसे हीन॥

इसी क्षणसे रघुनाथदासने महाप्रभुको बुलाकर जिमाना छोड़ दिया और स्वयं भी उस अर्थसे सर्वथा अलग हो गये। शरीर-निर्वाहके लिये वे मन्दिरके द्वारपर बैठकर नाम-कीर्तन करते और भीखमें जो मिल जाता, उसीसे काम चलाते। पर वहाँ भी बड़े आदमीका लड़का समझकर लोग कुछ बढ़िया चीज देने लगे, तब इन्होंने सोचा कि 'मन्दिरके सिंहद्वारपर बैठकर भिक्षा करना तो वेश्याका आचार है।' इसे भी छोड़ दिया।

फिर अयाचक-वृत्तिसे कुछ दिन माधुकरी भिक्षा की। तदनन्तर इसका भी त्याग कर दिया। अब वे मन्दिरके आँगनमें बिखरे हुए भातके दानोंको बटोरकर उन्हें धोकर उन्हींसे पेट भरने लगे। महाप्रभुको रघुनाथदासकी इस वृत्तिसे बड़ा ही अनुपम आनन्द प्राप्त हुआ। वे एक दिन अचानक पहुँचे और रघुनाथके हाथसे इस महाप्रसादको छीनकर बोले—'रघु! तुम जो यह देवदुर्लभ अन्न प्रतिदिन पा रहे हो, इसके सम्बन्धमें तो कभी कुछ नहीं कहा, न मुझे कभी कुछ इसका हिस्सा ही दिया।' महाप्रभुकी यह लीला देखकर रघुनाथ व्याकुल होकर रोने लगे—'अहा, मेरे समान अभागेके उद्धारके लिये ही महाप्रभुने ये दाने खाये हैं।'

इस प्रकार सोलह वर्ष तीव्र भक्ति-साधना करनेके बाद श्रीमहाप्रभुके अन्तर्धानके बाद श्रीरघुनाथदास वृन्दावनमें 'राधाकुण्ड' पर आ गये। यहाँ उनके जीवनका कार्यक्रम था—

अन्न-जलका त्याग करके ये नियमित दो-चार घूँट मट्ठा लेते। एक हजार दण्डवत् करते, लाख नामका जप करते, प्रतिदिन दो हजार वैष्णवोंको प्रणाम करते। दिन-रात श्रीराधा-माधवकी मानस-पूजा करते, एक प्रहर रोज महाप्रभुका चरित्रगान करते, प्रातः-मध्याह्न-सायं तीनों काल श्रीराधाकुण्डमें पवित्र स्नान करते, व्रजवासी वैष्णवोंका आलिंगन करते। इस प्रकार साढ़े सात पहर रसमयी प्रेमाभक्तिकी साधनामें बिताते। केवल चार घड़ी सोते, सो भी किसी-किसी दिन नहीं। इस प्रकार वैष्णवचूड़ामणि गोस्वामी श्रीरघुनाथदासने महान् आदर्श दैन्यपूर्ण, तपोनिष्ठ, संयम-नियमपूर्ण, भक्ति-प्रेमप्लावित जीवन बिताकर श्रीराधामाधवका अनन्य प्रेम प्राप्त किया।

करके त्याग अन्न-जल पूरा लेते थोड़ा मट्ठा माप।
एक सहस्र दण्डवत करते, करते लक्ष नामका जाप॥
प्रतिदिन करते दो सहस्र वैष्णव जनको अति नम्र प्रणाम।
करते मानस-सेवन राधामाधवका दिनरात ललाम॥
एक पहर करते प्रतिदिन श्रीमहाप्रभुका मधु लीला-गान।
तीनों संध्या करते राधाकुण्ड-सलिलमें पावन-स्नान॥
व्रजवासी वैष्णवको करते सदा समुद आलिंगन दान।
साढ़े सात पहर करते यों भक्ति-प्रेम-साधन रसखान॥
चार घड़ी सोना केवल, पर उसमें भी होता व्यवधान।
श्रीरघुनाथदास गोस्वामी वैष्णवाग्र आदर्श महान॥

वृषभानुकिसोरीकी दिव्य छटा

हरत मन माधव कंचन-गोरी॥
राधा अनियारे-रतनारे लोचन सौं, कछु भौंह मरोरी।
पग पैंजनि, दोउ चरन महावर, करधनि-धुनि मनु मधु रस-घोरी॥
दरपन कर सोहत, मुकता-मनि-हार हृदै, मृदु हँसनि ठगोरी।
नयननि बर अंजन मन-रंजन, चित्त-बित्त-हर नित बरजोरी॥
नील बसन, सरदिंदु-बदन-दुति, बेंदी सेंदुर-केसर-रोरी।
सहज मथत मन्मथ-मन्मथ-मन दिव्य छटा बृषभानुकिसोरी॥

कहानी—

'जिन खोजा तिन पाइयाँ'

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

कहते हैं कि कोई राजा शत्रुसे पराजित होकर भागा। उसने कई बार सैन्य एकत्र करके शत्रुपर आक्रमण किया, पर सफल न हो सका। भागकर वह जिस गुफामें छिपा था, उसमें एक मकड़ी एक स्थानपर अपना तन्तु लगाकर दूसरे स्थानको उछाल मार रही थी। वह अपना तन्तु वहाँतक पहुँचाना चाहती थी। राजा चुपचाप मकड़ीको देखने लगा। मकड़ी उछलती और विफल होकर गिर जाती। बार-बार यही क्रम चलता रहा। अंतमें मकड़ीने अपनी विफलताओंपर विजय पायी। भूपतिने मकड़ीसे शिक्षा ली, उन्होंने निराशा त्यागकर शत्रुपर प्रत्याक्रमण किया। संयोगवश इस बार विजयलक्ष्मीने वरमाला उन्हींके गलेमें डाली।

जरासन्ध मथुराकी सत्रह चढ़ाइयोंमें बुरी तरह पराजित हुआ, पर उसने भी अंतमें विजय लेकर छोड़ी। मैंने अपनी आँखों देखा है कि लोग प्रयागमें त्रिवेणीजीके गम्भीर जलमें पैसे छोड़ते हैं और मछुए डुबकी लगाकर उन्हें निकाल लेते हैं। एक, दो, चार, दस—चाहे जितनी डुबकियाँ लगानी पड़ें, वे पैसेको निकाल ही लेते हैं। पाश्चात्त्य लोगोंने उस धधकते हुए मरुस्थल सहारा (अफ्रीका)-में नील नदीका उद्गम ढूँढ़ निकाला। अपने सिरपर चमकते हुए उस लाल-लाल तारे (मंगल)-का पता पा लिया। जब लोग इतनी कठिन-कठिन वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं तो क्या मैं अपने लक्ष्यको नहीं पा सकता? देखूँ; असफलता कबतक मेरा पीछा करती है। या तो मैं ही रहूँगा या यह विफलता ही।

लगातार पाँच वर्षसे इस ओर लगा हूँ। न दिनको चैन, न रात्रिमें विश्राम। कभी जंगलोंमें, कभी पर्वतोंपर, कभी नगरोंमें, कभी नदियोंके किनारे—सभी प्रकारके स्थानोंमें गया। मेरी रात्रि कभी घोर वनमें शिलाके ऊपर, कभी धर्मशालामें, कभी किसी सूने मन्दिरमें और कभी किसी पथके वृक्षतले बीतती है। सभी रंगके साधुओंको देखा—लाल, पीले, गेरुए, सफेद और राजाओं-जैसे ऐश्वर्यवान् तथा नंगे भभूतिये भी। मुझे 'बं शंकर'की दम लगानेवाले, 'जय मैया'का प्याला चढ़ानेवाले और केवल फलाहारी या दुग्धाहारी भी मिले। भोगी, योगी, सिद्ध, पाखण्डी, भक्त, ज्ञानी, याज्ञिक प्रभृति सबके दर्शन हुए। सब हुआ, पर मुझे मेरे योग्य गुरु न मिले। न मेरा भटकना बंद हुआ और न मुझे मेरे अनुरूप कोई मिला ही।

बहुतोंने मुझपर दया की, दीक्षा देनेको भी बहुत तत्पर थे। जिनके दर्शनोंको लोग तरसते हैं, वे महापुरुष, सिद्ध योगी भी मेरे ऊपर प्रसन्न हुए। मैं चाहता तो वे भी मुझे अपने चरणोंमें रख लेते, पर मैं चाहता तब तो! मैं जो चाहता था, वह वहाँ भी मुझे नहीं मिला। मेरी अभीष्टसिद्धि वहाँ भी दिखायी न दी!

आप सोचते होंगे कि मैं ऐसी क्या विशेषता चाहता था। मैं सिद्ध या त्रिगुणातीतके फेरमें नहीं था। बात यह है कि मैं न तो अपनेपर विश्वास करता और न अपने मनपर। सभी महापुरुष साधन बतलाना चाहते थे—'साधन करो, आत्मोद्धार होगा।' बात तो ठीक थी, पर साधन करे कौन? मुझे विश्वास नहीं कि मैं साधन कर सकूँगा। मैं तो एक ऐसा गुरु चाहता था, जो कह दे '**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि**' जो मेरा पूरा उत्तरदायित्व ले ले। चाहे साधन करावे या तपस्या, पर मनको उस साधनमें प्रवृत्त रखनेका भार उसपर हो। जो भी कराना हो करावे, पर मैं न अपने अच्छे कर्मोंका उत्तरदायी रहूँ न दुष्कर्मोंका। मुझसे साधन हो तो ठीक और मैं अहंकारी रहूँ तो ठीक। सब वही जाने, मैं कुछ न जानूँ। ऐसा उत्तरदायित्व लेनेवाला मुझे कोई कहीं भी नहीं मिला।

(२)

निराश हो चुका था। भटकता हुआ व्रजमें पहुँचा। कई दिनका भूखा था, मुझे पता नहीं किसने लाकर वे रोटियाँ दीं। वे एक वृद्ध महात्मा थे, इतना ही जानता हूँ। बिना माँगे वे रोटियाँ लेकर आये और बोले—'तुम बहुत भूखे हो; लो, इन्हें पा लो।' मैंने रोटियाँ ले लीं,

उस शाकके संग मुझे रोटियोंमें अमृतका स्वाद आया। मैं पूछ भी न सका, भोजन करके देखता हूँ तो महात्माजी दिखायी नहीं दिये।

गोवर्धन आया और वहाँसे चन्द्रसरोवर गया। एक वृद्ध महात्मा वहाँ रहते थे। इतने प्रेमसे मिले मानो मैं उनका चिरकालसे वियुक्त पुत्र होऊँ। उनके प्रेमने हृदयके बाँधको तोड़ दिया। मैं उनके चरणोंके समीप बैठकर फूट-फूटकर रोने लगा। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया, आँसू पोंछे और रोनेका कारण पूछा। धीरे-धीरे मैंने अपने भटकनेका सारा वृत्तान्त कह सुनाया, अपने उद्देश्यको भी निवेदन किया। वे थोड़ी देर मौन रहे। कुछ सोचकर कहने लगे—'भटकना व्यर्थ है; मैं यह तो नहीं कहता कि महापुरुषोंमें तुम्हारे उद्देश्यको पूर्ण करनेकी शक्ति नहीं है, पर ऐसे महापुरुषोंको इस प्रकार भटकनेसे नहीं पाया जा सकता। ऐसे महापुरुषोंको पाना और श्यामसुन्दरको पाना एक ही बात है। इस गिरिराजकी तलहटीमें बहुतोंने उस नन्दनन्दनको पाया है। तुम भी अन्वेषण करो, सम्भव है पा सको। तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। यदि गुरु ही चाहिये तो उसका पता वही बता सकेंगे। मुझे कोई दूसरा मार्ग तो दीखता नहीं।'

महात्माजीको प्रणाम करके मैं उनके स्थानसे लौट आया। अब मेरा एक ही काम रह गया—'प्रात: नेत्र खुलते ही चल देना, जहाँ जल मिले वहीं नित्यकर्म करके दिनभर गिरिराजकी परिक्रमा करते रहना। यदि कोई कुछ बिना माँगे खानेको दे दे तो ग्रहण कर लेना। मुझे स्मरण नहीं कि वहाँ कभी उपवास करना पड़ा हो।

मैं सीधे मार्गसे परिक्रमा तो करता न था, कभी आस-पासकी कुंजोंको ढूँढ़ता और कभी गिरिराजके ऊपर चढ़कर इधर-उधर देखता। कभी पीछे लौट पड़ता। वहाँके लोग मुझे पागल समझने लगे। मैं रात्रिमें किसी शिलापर लेट रहता, जैसे ही नेत्र खुलते, रात्रिमें भी इधर-उधर कुंजोंको देखने चल देता। फिर नींद आती तो किसी भी शिलापर सो रहता।

मुझे इस प्रकार पूरे दो महीने बीत गये। जी ऊबने लगा। निश्चय किया कि अब तो उनके दर्शन करके ही अन्न या जल ग्रहण करूँगा। यदि शरीरको छूटना ही हो तो यहीं छूटे। भूखे-प्यासे चलना कठिन तो अवश्य हो गया; फिर भी जितना हो सकता था, चलता था। इस प्रकार भी छ: दिन व्यतीत हो गये।

(३)

रात्रिके बारह बजे होंगे। मेरी नींद खुली, पूर्णिमाके चन्द्रमाकी ज्योत्स्नासे वनभूमि आलोकित हो रही थी। मैं शिलापरसे उठ बैठा। एक बहुत सुन्दर-सा बछड़ा आया और मेरी शिलाको सूँघकर उछलता हुआ एक ओर दौड़ गया। मैंने सोचा किसीका बछड़ा छूट गया होगा; पर दृष्टि उठाते ही बहुत-सी गायें और बछड़े चरते हुए दीख पड़े। 'इतनी रात्रिमें कौन गायें चरा रहा है?' मैं चरवाहेको देखने उठा।

पता नहीं मेरी अशक्ति कहाँ चली गयी थी। शरीरमें विलक्षण स्फूर्ति थी। मैं गायोंके पास गया, पर वहाँ कोई चरवाहा नहीं दिखायी पड़ा। एक कुंजसे कुछ शब्द आ रहे थे, मैं उधर ही बढ़ गया। मैंने बाहरसे ही पुकारा—'अरे इतनी रात्रिको कौन गायें लाया है?' कुछ लड़के कुंजसे निकल आये। वे लड़के कैसे थे? कैसे बताऊँ? देवता भी इतने सुन्दर होते होंगे? संदेह ही है। उनमें एक साँवले रंगका बालक था, उसे तो देखकर दृष्टि वहीं रुक गयी। उसीने व्रजभाषामें कहा ***'कहा है? गायनने तो हम ल्याये हैं, पै तू इतनी रात कूँ इतै च्यों डोल रह्यो है?'*** और वे सब मेरे समीप आ गये।

एकने कहा—***'दादा! यो बावरो भूखो सो लगै, याकूँ कछू खवावौ।'*** उनमेंसे एक जो सबसे बड़े थे, गोरे-गोरे-से, उन्होंने कहा—***'अच्छो, तू दूध तौ पी ले।'*** मैंने सिर हिला दिया। ***'च्यों? तोय भूख नाय लगी?'*** 'भूख तो लगी है, पर मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है।' वे सब हँस पड़े। उस साँवले कुमारने कहा—***'प्रतिज्ञा कहा करी है?'*** उसमें कुछ ऐसा आकर्षण था कि मैं उन बच्चोंसे भी कुछ छिपा न सका। अनावश्यक था, फिर भी मैंने अपनी सारी दशा कही, अपनी प्रतिज्ञा भी सुनायी।

ताली बजाकर वे सब हँस पड़े। ओह! उनके हास्यमें कितना आनन्द था! *'बावरो है, बावरो।'* फिर उस साँवलेने हँसते हुए कहा—*'तू मोकूँ गुरू बनाय ले। च्यों मोय गुरू बनावैगो? देख इतै उतै बावरो सो डोलियो नहीं, दादा ते कह दूँगो, बहुत मारैगो। हाँ! मैं जो कछू कहूँगो, सो तोय करनो परैगो। करनो तो कछू नायँ, मेरे ढोरनने घेर लायो करियो। खेलनमें तोकूँ छुट्टी। अच्छा ले, दादा! या कूँ दूध प्या। ना पीवै तो चाँटा मारकै प्या।'* वह हँसने लगा। *'देख, तू बावरो मत बनै। दादा तोय अपने संग राखैगो।'* मैं उस चरवाहेकी बातोंको सुन रहा था। उसके बचपनपर मुझे बरबस हँसी आ गयी।

सचमुच उनके दादा (बड़े भैया)-ने दूधका बर्तन मेरे मुँहसे लगा दिया। वह गुदगुदाने लगा। अजी दूध भी कहीं इतना स्वादिष्ट होता है? वह अमृत होगा—अमृत! पता नहीं मैं कितना पी गया। मुझे तो ऐसा लगता है कि दो-चार सेर अवश्य पी गया होऊँगा। भर पेट पिया। दूध पिलाकर उन्होंने एक बछड़ेको, जो दूर भाग गया था, घेर लानेको कहा। मैं उस बछड़ेको लौटाने चला।

चंचल बछड़ा मुझे देखते ही चौकड़ी भरकर भागा। मैं उसके पीछे दौड़ा। सहसा किसी वृक्षकी ठोकर लगी, मैं धड़ामसे गिर पड़ा। वे दौड़े उठानेको।

(४)

सहसा नींद खुल गयी। 'अरे क्या यह सब स्वप्न था?' हुआ करे। मैंने प्रभुको प्रणाम किया। अवश्य ही उन्होंने मुझे इस विशाल स्वप्नमें आदेश दिया है—

'उद्योग करो, सफलता तो निश्चित ही है। करना-कराना सब हमारे हाथमें है। प्रयत्न छोड़ो मत। हताश होनेका कोई कारण नहीं। मैं तुम्हारे साथ हूँ।'

'जिन खोजा तिन पाइयाँ!'

श्रीराधाजीका 'आनन्दचन्द्रिका' नामक स्तोत्र

राधा दामोदरप्रेष्ठा राधिका वार्षभानवी। समस्तवल्लवीवृन्दधम्मिल्लोत्तंसमल्लिका॥ १॥
कृष्णप्रियावलीमुख्या गान्धर्वा ललितासखी। विशाखासख्यसुखिनी हरिहृद्भृंगमञ्जरी॥ २॥
इमां वृन्दावनेश्वर्या दशनाममनोरमाम्। आनन्दचन्द्रिकां नाम यो रहस्यां स्तुतिं पठेत्॥ ३॥
स क्लेशरहितो भूत्वा भूरिसौभाग्यभूषितः। त्वरितं करुणापात्रं राधामाधवयोर्भवेत्॥ ४॥

१. राधा—श्रीकृष्णके द्वारा आराधित अथवा निर्वाणप्रदायिनी, **२. दामोदरप्रेष्ठा**—दामोदर नन्दनन्दनकी प्रेयसी, **३. राधिका**—श्रीकृष्णकी सर्वदा आराधना करनेवाली, **४. वार्षभानवी**—वृषभानुजीकी पुत्री, **५. समस्तवल्लवीवृन्दधम्मिल्लोत्तंसमल्लिका**—समस्त गोपांगनाओंके केशपाशको अलंकृत करनेवाली मल्लिका अर्थात् गोपरमणियोंमें सर्वश्रेष्ठ, **६. कृष्णप्रियावलीमुख्या**—श्रीकृष्णकी प्रियतमाओंमें प्रमुख, **७. गान्धर्वा**—संगीतादि ललित कलाओंमें निपुण, **८. ललितासखी**—ललितासखीके साथ विराजनेवाली, **९. विशाखासख्यसुखिनी**—विशाखा सखीके सख्यभावसे सुखी होनेवाली, **१०. हरिहृद्भृंगमंजरी**—श्रीकृष्णके मनरूप भ्रमरके आश्रयहेतु पुष्पमंजरीस्वरूपा॥ १-२॥

जो व्यक्ति वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाके दस नामोंसे शोभायमान इस 'आनन्दचन्द्रिका' नामवाली गोपनीय स्तुतिका (मननपूर्वक) पाठ करता है, वह (सभी) क्लेशोंसे मुक्त, प्रचुर सौभाग्यसे विभूषित तथा श्रीराधा-माधवका कृपापात्र हो जाता है॥ ३-४॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितस्तवमालायां श्रीराधिकाया आनन्दचन्द्रिकाख्य-दशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

॥ इस प्रकार श्रीमद्रूपगोस्वामीविरचित स्तवमालामें श्रीराधिकाका आनन्दचन्द्रिकासंज्ञक दशनामात्मक स्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

गोचरभूमिकी गौरव-गाथा

(श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)

वह भी एक युग था जब हमारे भारतवर्षमें गोचर-भूमिकी प्रचुरता थी और निर्धन-से-निर्धन व्यक्ति भी गायें पाल सकता था। गोचरभूमिमें चरनेवाली गायें हरी घास या वनस्पतिके प्रभावसे नीरोग और हृष्ट-पुष्ट रहतीं और उनका दूध सुपाच्य तथा पुष्टिकारक होता था। उन गायोंका मूत्र सर्व रोगों—विशेषकर उदर, नेत्र तथा कर्ण-रोगोंको समूल नष्ट करनेकी क्षमता रखता था। आज गोदुग्ध-मूत्रादिमें वैसा चमत्कार न दीखनेका यही मुख्य कारण है कि हमारे देशमें गोचरभूमिकी समुचित व्यवस्था नहीं है। पर, वैदिक युगमें गोचरभूमिका बड़ा महत्त्व था। ऋग्वेद (१।२५।१६)-में एक मन्त्र है—

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥

इसका भाव है कि गायें जिस तरह गोचरभूमिकी ओर जाती हैं, उसी तरह उस महान् तेजस्वी परमात्माकी प्राप्तिकी कामना करती हुई बुद्धि उसीकी ओर दौड़ती रहे। ईश्वरकी ओर बुद्धि लगी रहे, यह भाव व्यक्त करनेके लिये गायोंके गोचरभूमिकी ओर जानेका दृष्टान्त दिया गया है। इसी प्रकार ऋग्वेद (१।७।३)-में एक दूसरा मन्त्र है—

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्॥

भाव यह कि सुरपति इन्द्रने दूरसे प्रकाश दीख पड़े, इस हेतु सूर्यको द्युलोकमें रखा और स्वयं गायोंके संग पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। दूसरे शब्दोंमें—गायोंको चरनेके लिये पर्वतोंपर भेजना चाहिये। पर्वत भी गोचर-भूमिकी श्रेणीमें आते हैं। पर्वतका पर्याय गोत्र है, जिसका एक अर्थ गायोंको त्राण देनेवाला भी होता है। पर्वतोंपर गौओंको पर्याप्त चारा और जल तो सुलभ रहता ही है, उन्हें शुद्ध वायु और व्यायामलाभ भी हो जाता है।

पद्मपुराण, मनु, याज्ञवल्क्य तथा नारदादि स्मृतियोंमें भी गोचरभूमिका वर्णन मिलता है। उन सबका सारांश संक्षेपमें यही है कि यथाशक्ति गोचरभूमि छोड़नेवालेको नित्य-प्रति सौसे अधिक ब्राह्मणभोजन करानेका पुण्य मिलता है और वह स्वर्गका अधिकारी होता है, नरकमें नहीं जाता। गोचरभूमिको रोकने या बाधा पहुँचानेवाले तथा वृक्षोंको नष्ट करनेवाले इक्कीस पीढ़ीतक रौरव नरकमें पड़े रहते हैं। चरती हुई गौओंको बाधा पहुँचानेवालोंको समर्थ ग्रामरक्षक दण्ड दे, ऐसा पद्मपुराणमें कहा गया है—

गोप्रचारं यथाशक्ति यो वै त्यजति हेतुना।
दिने दिने ब्रह्मभोज्यं पुण्यं तस्य शताधिकम्॥
तस्माद् गवां प्रचारं तु मुक्त्वा स्वर्गान्न हीयते।
यच्छिनत्ति द्रुमं पुण्यं गोप्रचारं छिनत्त्यपि॥
तस्यैकविंशपुरुषाः पच्यन्ते रौरवेषु च।
गोचारघ्नं ग्रामगोपः शक्तो ज्ञात्वा तु दण्डयेत्॥

(सृष्टिखण्ड, अ० ५९, श्लोक ३८—४०)

पद्मपुराणमें वर्णित एक प्रसंगके अनुसार चरती हुई गायको रोकनेसे नरकमें जाना पड़ता है। स्वयं महाराज जनकको चरती हुई गायको रोकनेके फलस्वरूप नरकका द्वार देखना पड़ा था। सावधान रहकर आत्मरक्षा करना कर्तव्य है; पर चरती गायको ही क्या, आहार करते समय जीवमात्रको रोकना या मारना मनुष्यता नहीं है। धार्मिक दृष्टिसे भी ऐसा करना अनुचित है।

पहले कहा गया है कि हमारे देशमें गोचरभूमिकी प्रचुरता थी। इतना ही नहीं; अपितु राजवर्ग तथा प्रजावर्ग दोनोंकी ओरसे गोचरभूमि छोड़ी जाती थी। पुण्यलाभकी दृष्टिसे धर्मशाला, पाठशाला, कूप और तालाब आदि बनवानेकी प्रथाकी भाँति गोचरभूमि खरीदकर कृष्णार्पण करनेकी उस युगमें प्रथा थी। आज भी वे गोचरभूमियाँ विद्यमान हैं और उनके दानपत्रोंमें स्पष्ट अंकित है—'इस गोचरभूमिको नष्ट करनेवाले यावच्चन्द्रदिवाकर नरकवास करेंगे।'

गाँवके निकट चारों ओर चार सौ हाथ यानी तीन बार फेंकनेसे लकड़ी जहाँ जाकर गिरे, वहाँतककी भूमि और नगरके निकट चारों ओर इससे तिगुनी भूमि यानी बारह सौ हाथ भूमि गोचारणके लिये छोड़नेका आदेश देते हुए मनुजी आगे कहते हैं कि यदि उतनी भूमिके अन्दरकी किसी ऐसी कृषिको, जिसके चारों ओर बाड़ न लगे हों, ग्रामके पशु नष्ट कर दें तो यह उनका अपराध नहीं और इसके लिये पशुरक्षकको राजदण्ड नहीं मिलना चाहिये—

धनुश्शतं परीहारो ग्रामस्य स्यात् समन्ततः।
शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु॥
तत्रापरिवृतं धान्यं विहंस्युः पशवो यदि।
न तत्र प्रणयेद् दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम्॥

(मनुस्मृति ८। २३७-२३८)

महर्षि याज्ञवल्क्यका भी यही मत है। उन्होंने पर्वतकी तराईके गाँवोंके निकट आठ सौ हाथ तथा नगरके निकट सोलह सौ हाथ गोचरभूमि छोड़नेकी व्यवस्था दी है। लिखा है—

धनुश्शतं परीणाहो ग्रामे क्षेत्रान्तरं भवेत्।
द्वे शते खर्वटस्य स्यान्नगरस्य चतुश्शतम्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति २। १६७)

यह भी आदेश है कि खेत गाँव तथा शहरसे दूर हों और खेतोंमें बाड़ घनी हो। बाड़की गहराई इतनी हो कि कृषितक ऊँटकी दृष्टि भी न पहुँच सके और न कुत्ते, सूअर आदि ही उसके छिद्रोंसे किसी प्रकार अन्दरकी ओर प्रविष्ट हो सकें। 'नारदस्मृति' के अनुसार बाड़ न लगानेके कारण खेतीको यदि पशु चर जायँ या खेतमें घुसें तो राजा पशुओंको दण्ड नहीं दे सकता, वह उन्हें हँकवा सकता है। बाड़ तोड़कर यदि पशु कृषिको नष्ट करें तो वे दण्डके अधिकारी होंगे।

मनुका भी यह कथन है कि राहके निकट या गाँवके पड़ोसके बाड़ लगे खेतोंमें यदि पशु किसी प्रकार पहुँचकर अनाज खा जायँ तो राजा पशुपालकपर सौ पण दण्ड लगाये, किंतु यदि पशु बिना रखवालेका हो तो उसे सिर्फ हँकवा दे—

पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः।
स कालः शतदण्डार्हो विपालान् वारयेत्पशून्॥

(मनुस्मृति ८। २४०)

महर्षि याज्ञवल्क्यके वचनानुसार राह, ग्राम और गोचरभूमिके निकटके खेतको यदि रखवालेकी अज्ञातावस्थामें पशु नष्ट कर दें तो वह दोषी नहीं होगा। हाँ, यदि खेतको रखवाला जान-बूझकर चरा दे तो अपराधी है और चोरकी भाँति उसे दण्ड मिलना चाहिये—

पथि ग्रामविवीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते।
अकामतः कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति २। १६२)

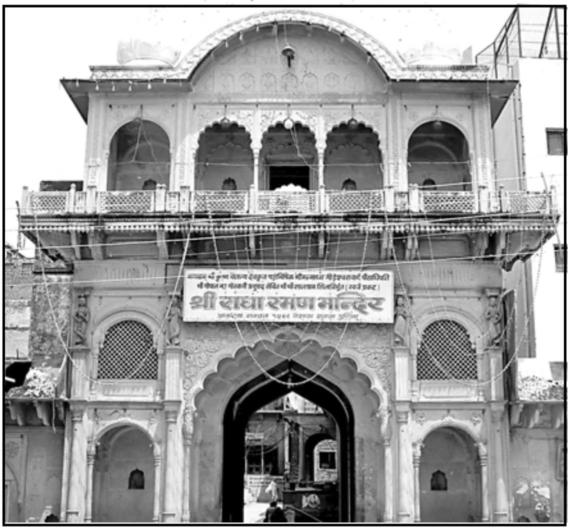
अन्तमें एक अत्यन्त रोचक और तथ्यपूर्ण प्रसंग उल्लेख्य है, जिससे गोचरभूमि हड़पनेवाले नराधमोंके पापकी भयंकरतापर प्रकाश पड़ता है। एक बार एक चाण्डालकी पत्नी चिताग्निमें नर-कपाल रखकर उसमें कौवेका मांस पकाया और उसको उसने कुत्तेके चमड़ेसे ढँक रखा था। एक व्यक्तिको यह देखकर स्वभावतः कौतूहल हुआ और उसने चाण्डालिनीसे पूछा—'तूने ऐसी घृणित चीजको भी क्यों ढँक रखा है?' उसने कितना मार्मिक उत्तर दिया था—'मैंने इसे इस भयसे ढँक रखा है कि मेरा यह स्थान खेतोंके समीप है। यदि किसी ऐसे महापापी व्यक्तिकी, जिसने गोचरभूमिको अपने खेतमें मिला लिया है, दृष्टि पड़ जायगी तो मेरा यह आहार ग्रहण करने लायक नहीं रह जायगा।'

नृकपाले तु चाण्डाली काकमांसं श्वचर्मणा।
चच्छाद गोचरक्षोणीकृषिकृद्दृष्टिभीतितः॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोचरभूमि छोड़ना महान् पुण्य और उसे नष्ट करना या हड़पना महापाप है। हमारे देशमें गोवधकी भाँति गोचरभूमि भी एक समस्याके रूपमें उपस्थित है। गोचरभूमिका हमारे यहाँ बड़ा अभाव-सा है और उसकी बड़ी दुर्व्यवस्था है। इसके कई कारण हैं, जिनपर फिर कभी विचार किया जायगा।

वृन्दावनका श्रीराधारमणलाल मंदिर

(डॉ० श्रीभागवतकृष्णजी नांगिया)



श्रीराधारमणलालजीका मन्दिर सुप्रसिद्ध गौड़ीय सप्त देवालयोंमेंसे एक है। षड्गोस्वामियोंमें अन्यतम श्रीपादगोपालभट्ट गोस्वामीद्वारा प्रकटित और सेवित श्रीराधारमणलालजी भक्तोंको नित्य नव उल्लास और आनन्द प्रदान करते हैं।

श्रीराधारमणलालजी पहले शालग्रामरूपमें विराजमान थे। एक समय किसी भक्तने श्रीधाम वृन्दावनमें आकर समस्त श्रीविग्रहोंके लिये वस्त्र-अलंकार भेंट किये। श्रीपाद गोपालभट्टजी मनमें विचारने लगे कि मेरे आराध्य भी यदि अन्य श्रीविग्रहोंकी भाँति होते तो मैं भी उन्हें इन वस्त्रालंकारोंसे विभूषित करता। श्रीनृसिंहचतुर्दशीके दिन प्रह्लादके प्रेमके वशीभूत होकर प्रभु खम्भेसे प्रकट हो सकते हैं तो क्या मेरा ऐसा सौभाग्य होगा कि प्रभु शालग्रामसे प्रकट हो जायँ। उन्होंने बहुत आर्त्त होकर विनय की। उस दिनकी रात्रि व्यतीत होनेके पश्चात् वैशाख शुक्ला पूर्णिमाको प्रात:काल यह देखकर उनके आनन्दकी सीमा न रही कि श्रीशालग्राम त्रिभंगललित, द्विभुज, मुरलीधर, मधुरमूर्ति श्यामरूपमें आसनपर विराजमान हैं।

संवत् १५९९की वह वैशाख शुक्ला पूर्णिमा व्रजमें एक अपूर्व आनन्दोल्लास बिखेर रही थी। श्रीरूप-सनातनादि गुरुजनोंके सान्निध्यमें महाभिषेक उत्सव हुआ और श्रीराधारमणलालजीने सबको आनन्द प्रदान किया। श्रीराधारमणजीका मुख श्रीगोविन्ददेवके समान, वक्ष:स्थल श्रीगोपीनाथके समान तथा चरणयुगल श्रीमदनमोहनके समान हैं। अत: श्रीराधारमणलालजीके दर्शनकर दर्शनार्थियोंको एक ही श्रीविग्रहमें चारों श्रीविग्रहोंके दर्शन प्राप्त होते हैं।



भक्तिरत्नाकर ग्रन्थसे यह जाना जाता है कि श्रीपाद गोपालभट्ट गोस्वामीने श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त किया था और प्रभुने यह आदेश दिया था कि गोपाल! तुम श्रीवृन्दावन चले जाना, वहाँ श्रीरूप-सनातनके निकट रहकर भजन-साधनकर तुम्हें श्रीकृष्णकी प्राप्ति होगी।

माता-पिताके देहावसानके बाद श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी सब कुछ परित्यागकर श्रीधाम वृन्दावन आ गये। वे कुछ दिन श्रीराधा-श्यामकुण्डके बीच केलिकदम्बके नीचे वास करनेके बाद 'जावट' ग्रामके पास किशोरकुण्डपर भजन-साधन करने लगे। महाप्रभुको जब यह पता चला तो प्रभुने अपनी डोर, कौपीन, बहिर्वास और एक आसन इनके लिये प्रसादरूपमें भेजा; जो श्रीराधारमणमन्दिरमें आज भी संरक्षित हैं और समय-समयपर उनके दर्शन भी होते हैं। [श्रीहरिनाम]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्‌की सब लीलाओंका अनुकरण नहीं हो सकता

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। भगवान्‌की अवतार-लीलाओंके सम्बन्धमें कुछ भी संदेह न करके ऐसा मानना चाहिये कि वे भगवान् हैं, सर्वसमर्थ हैं, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं—चाहे जैसे, चाहे जो, चाहे जब कर सकते हैं; उनके लिये सभी कुछ ठीक है। पर हमें अनुकरण उन्हीं बातोंका करना चाहिये, जिनके लिये उनका तथा उनकी ही वाणीरूप शास्त्रोंका आदेश हो; और सच बात तो यह है कि भगवान्‌की सारी लीलाओंका अनुकरण किया भी नहीं जा सकता।

भगवान्‌की लीलाएँ प्रधानतया तीन प्रकारकी होती हैं—१. लोकसंग्रह या लोकशिक्षाके लिये की जानेवाली आदर्श लीला, २. अद्‌भुत, असम्भव जान पड़नेवाली ऐश्वर्यमयी लीला और ३. अन्तरंग प्रेमी भक्तोंके साथ की जानेवाली प्रेममयी लीला।

(१) माता-पिताकी भक्ति, गुरुकी भक्ति, ब्राह्मण-भक्ति, सदाचार, देवपूजन, दीनरक्षण, इन्द्रियनिग्रह, ध्यान-पूजन, सत्य व्यवहार, निष्कामभाव, अनासक्ति, समत्व, नित्य आनन्दमें स्थिति आदि यथायोग्य अनुकरण करनेयोग्य आदर्श लीलाएँ हैं। इनका अनुकरण अपने-अपने अधिकारके अनुसार किया जा सकता है और करना ही चाहिये। भगवान्‌का आदेश भी है ऐसा करनेके लिये।

(२) अग्नि पीना, वरुणलोकमें जाना, अँगुलीपर सात दिनोंतक पर्वत उठाये रखना, कई प्रकारसे अपने विराट्‌रूपके दर्शन कराना, अघासुर-शिशुपाल आदिके मरनेपर उनकी आत्मज्योतिको अपनेमें विलीन कर लेना, हजारों-लाखों मनुष्योंके साथ विभिन्न भावोंसे एक ही साथ मिलना, हजारों रानियोंके महलोंमें एक साथ रहना, दो जगह एक ही साथ एक ही समय आतिथ्य स्वीकार करना, सूर्यको ढक देना, असंख्य गोवत्स, गोपबालक तथा उनकी प्रत्येक वस्तुके रूपमें स्वयं बन जाना, ब्रह्माजीको सबमें भगवत्स्वरूपके तथा महान् ऐश्वर्यके दर्शन कराना, अक्रूरको जलमें दर्शन कराना, मारकर असुरोंका उद्धार करना आदि ऐश्वर्यमयी लीलाएँ हैं। इनका अनुकरण साधारण मनुष्यके द्वारा सर्वथा असम्भव है।

(३) गोपियोंके घरोंसे माखन चुराकर खाना, चीरहरण, रासलीला और निकुंजलीला आदि अन्तरंग मधुर प्रेमलीलाएँ हैं, जिन्हें भगवान् अपने आत्मस्वरूप पार्षदोंके तथा प्रेमियोंके साथ अनर्गल-अमर्यादरूपमें श्रुतिसेतुका भंग करके अपने-आपमें ही किया करते हैं—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

'रमानाथ भगवान्‌ने व्रजसुन्दरियोंके साथ वैसे ही खेल किया, जैसे बालक अपनी छायाके साथ करता है।'

इन मधुर लीलाओंका अनुकरण कदापि नहीं करना चाहिये। जो मूढ़ इनका अनुकरण करने जाता है, वह शास्त्र और धर्मसे च्युत होकर घोर नरकका अधिकारी होता है!

वस्तुतः इन तीनों प्रकारकी लीलाओंमें केवल पहली लीला ही अनुकरणके योग्य होती है। पिछले दोनों प्रकारकी लीलाएँ तो श्रवण, कीर्तन, मनन और ध्यान करके भगवान्‌के प्रति भक्ति तथा प्रेम प्राप्त करनेके लिये हैं। शुद्ध मनसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्‌की ऐश्वर्य और माधुर्यसे भरी लीलाओंका चिन्तन करना चाहिये और आदर्श लोकशिक्षामयी लीलाओंको अपने जीवनमें उतारना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

(२)

गोपीहृदयमें प्रेम-समुद्र

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। वास्तवमें ये गोपरमणियाँ प्रेम-जगत्‌की तो परम आदर्श हैं ही, नारी-जगत्‌में भी इनकी कहीं तुलना नहीं है। विश्व तो क्या, भगवत्-राज्यमें भी किसी भी नारीके चरित्रमें नारी-जीवनकी महिमामयी सेवाकी ऐसी आदर्श मनोहर सहज मूर्तिका विकास नहीं हुआ। सावित्री, अरुन्धती, लोपामुद्रा, उमा, रमा—किसीकी उपमा श्रीगोपांगनाओंके साथ नहीं दी जा सकती। आत्मसुख-लालसाकी गन्धसे रहित होकर केवल अपने प्रियतम श्रीकृष्णको सुखी करनेके लिये ही जीवन धारण करना, लोक-परलोक, भोग-मोक्ष—सब

कुछ भूलकर प्रियतमकी रुचिके अनुसार अपने जीवनकी क्षण-क्षणकी समस्त क्रियाओंका सहज सम्पादन करना ही गोपी-प्रेम है।

श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, उनमें किसी भी वासना-कामनाका पृथक् अस्तित्व नहीं है; पर वे परम प्रेमास्पद भगवान् श्रीगोपांगनाओंके प्रेम-सुखका आस्वादन करने-करानेके लिये अपने भगवत्स्वरूप मनमें नित्य नयी-नयी विचित्र वासनाओंका उदय करते हैं और भगवान्की उन प्रतिक्षण उदय होनेवाली नित्य-नवीन वासनाओंके अनुकूल अपनेको निर्माण करके भगवान्को सुख पहुँचाना केवल श्रीगोपांगनाओंके ही शक्ति-सामर्थ्यसे सम्भव है। बस, प्रियतमकी रुचिको—चाहको पूर्ण करना ही जिनके जीवनका स्वरूप है, जिनकी प्रत्येक स्फुरणामें, प्रत्येक संकल्पमें, प्रत्येक चेष्टामें, प्रत्येक शब्दमें और प्रत्येक क्रियामें केवल प्रेमास्पद श्रीकृष्णकी दिव्य प्रेमजनित वासनापूर्तिका ही सहज सफल प्रयास है, उन श्रीगोपांगनाओंकी तुलना कहीं, किसीसे भी नहीं हो सकती। श्रीगोपांगनाओंमें मधुरभावकी पूर्ण अभिव्यक्ति है। इस मधुरभावसे ही मधुर रसका प्राकट्य होता है। एक महात्माने बताया है कि यह मधुर रस तीन प्रकारका होता है। तीनों ही अत्यन्त मूल्यवान् हैं, पर एककी अपेक्षा दूसरा अधिक उत्कृष्ट और मूल्यवान् है। जैसे मणियाँ तीन प्रकारकी होती हैं—साधारण मणि, चिन्तामणि और कौस्तुभमणि। साधारण मणिका जैसा साधारण मूल्य होता है, वैसे ही श्रीकृष्णके प्रति कुब्जाकी प्रीतिका मूल्य साधारण है। श्रीकृष्ण-सम्पर्कसे महाभागा होनेपर भी उसमें श्रीकृष्णकी सेवा करके केवल अपनेको ही सुख पहुँचानेका संधान था। इसीसे उसे 'दुर्भगा' कहा गया। चिन्तामणि जहाँ-तहाँ सहजमें नहीं मिलती। उसका मूल्य भी बहुत अधिक है। सब लोग उतना मूल्य दे ही नहीं सकते। वैसे ही श्रीकृष्णकी पटरानियोंकी दिव्य प्रीति है। श्रीकृष्णका भी सुख और अपना भी सुख—उनमें इस प्रकारका उभय-सुखी भाव बना रहता है; इसलिये उनकी इस रतिका नाम 'समंजसा' है। श्रीगोपांगनाका प्रेम साक्षात् कौस्तुभमणिके सदृश है। चिन्तामणि तो दस-बीस भी मिल सकती हैं, पर कौस्तुभमणि तो एक ही है और वह केवल श्रीभगवान्के कण्ठका ही भूषण है, वह दूसरी जगह कहीं भी नहीं मिलती। इसी प्रकार श्रीगोपांगनाकी प्रीति भी श्रीकृष्णकी मधुर लीलास्थली व्रजके सिवा अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। ऐसा प्रेम श्रीगोपांगना ही जानती है, कर सकती है और यह प्रेम इस प्रेमके एकमात्र पात्र श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर मुरलीमनोहर गोपीवल्लभ श्रीकृष्णके प्रति ही हो सकता है। इस दिव्य प्रेम-सुधा-रसका अनन्त अगाध समुद्र नित्य-नित्य लहराता रहता है—गोपीहृदयमें। इसीसे वह अनुपमेय, अतुलनीय और अप्रमेय है।

(३)

श्रीराधा-प्रेमका स्वरूप

प्रिय महोदय, सादर प्रणाम। आपने श्रीराधाके प्रेमका स्वरूप पूछा सो इसका उत्तर मैं प्रेमशून्य जन्तु क्या दूँ, यद्यपि मैं 'राधा' पर बोलने-लिखनेका दुस्साहस सदा करता रहता हूँ। मुझे इसमें सुख मिलता है। इसीसे ऐसा करता हूँ। राधा या राधा-प्रेम-तत्त्वका विवेचन मेरी शक्तिसे परेकी चीज है। पर सदा लिखता हूँ—इसलिये आपको भी दो-चार शब्द लिख ही देता हूँ।

श्रीराधाका प्रेम अचिन्त्य और अनिर्वचनीय है। उसका वर्णन न श्रीराधा कर सकती हैं, न श्रीमाधव ही करनेमें समर्थ हैं। कहनेके लिये इतना ही कहा जाता है कि वह प्रेम परम विशुद्ध तथा परम उज्ज्वल है। स्वर्णको बार-बार अग्निमें जलानेपर जैसे उसमें मिली हुई दूसरी धातु या दूसरी चीजें जल जाती हैं और वह स्वर्ण जैसे अत्यन्त विशुद्ध और उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही राधाका प्रेम केवल विशुद्ध प्रेम है। पर वह स्वर्णकी भाँति जलानेपर विशुद्ध नहीं हुआ है, वह तो सहज ही, स्वरूपतः ही ऐसा है। सच्चिदानन्दमयमें दूसरी धातु आती ही कहाँसे? यह तो साधकोंके लिये बतलाया गया है कि श्रीकृष्ण-प्रेमकी साधनामें परिपक्व व्रजरसके साधकके हृदयसे दूसरे राग और दूसरे काम सर्वथा जल जाते हैं और उनका प्रेम एकान्त परिशुद्ध हो जाता है। श्रीराधामें यह दिव्य प्रेम सहज और परमोच्च शिखरपर आरूढ़ है। इसी राधाप्रेमका दूसरा नाम अधिरूढ़ महाभाव है। इसमें केवल 'प्रियतम-सुख' ही सब कुछ है। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७५, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
द्वितीया रात्रिमें ३। १० बजेतक	शुक्र	हस्त दिनमें १२। ३६ बजेतक	२२ मार्च	**तुलाराशि** रात्रिमें १२। ८ बजेसे, शक संवत् १९४१ प्रारम्भ।
तृतीया ,, १।४१ बजेतक	शनि	चित्रा ,, ११। ३९ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिन में २। २५ बजेसे रात्रिमें १। ४१ बजेतक।
चतुर्थी ,, १२।३६ बजेतक	रवि	स्वाती ,, ११। ० बजेतक	२४ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ४।५० बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ४२ बजे।
पंचमी ,, ११।५८ बजेतक	सोम	विशाखा ,, १०। ४६ बजेतक	२५ ,,	**रंगपंचमी।**
षष्ठी ,, ११।५१ बजेतक	मंगल	अनुराधा ,, ११। २ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। ५१ बजेसे, **मूल** दिनमें ११। २ बजेसे।
सप्तमी ,, १२।१५ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, ११। ४८ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ४ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें ११। ४८ बजेसे।
अष्टमी ,, १।१० बजेतक	गुरु	मूल ,, १। ३ बजेतक	२८ ,,	**मूल** दिनमें १। ३ बजेतक।
नवमी ,, २।३१ बजेतक	शुक्र	पू०षा० ,, २। ४५ बजेतक	२९ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ९। १८ बजेसे।
दशमी रात्रिशेष ४।१७ बजेतक	शनि	उ०षा० सायं ४।५५ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें ३। २४ बजेसे रात्रिशेष ४। १७ बजेतक।
एकादशी अहोरात्र	रवि	श्रवण रात्रिमें ७। २० बजेतक	३१ ,,	**रेवतीका सूर्य** रात्रिमें २। ५४ बजे।
एकादशी प्रातः ६।१६ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, ९। ५६ बजेतक	१ अप्रैल	**कुम्भराशि** दिनमें ८। ३८ बजेसे, **पापमोचनी एकादशीव्रत** (सबका), **पंचकारम्भ** दिनमें ८। ३८ बजे।
द्वादशी दिनमें ८।२३ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, १२। ३२ बजेतक	२ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १०।२५ बजेतक	बुध	पू० भा० ,, २। ५९ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। २५ बजेसे रात्रिमें ११। १९ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ८। २२ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १२। १२ बजेतक	गुरु	उ०भा० रात्रिशेष ५।७ बजेतक	४ ,,	**श्राद्धादिकी अमावस्या, मूल** रात्रिशेष ५। ७ बजेसे।
अमावस्या १। ३८ बजेतक	शुक्र	रेवती अहोरात्र	५ ,,	**अमावस्या**

सं० २०७५, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।३६ बजेतक	शनि	रेवती प्रातः ६। ४८ बजेतक	६ अप्रैल	**मेषराशि** प्रातः ६। ४८ बजेसे, **चैत्र नवरात्रारम्भ, 'परिधावी' संवत्सर, पंचक समाप्त** प्रातः ६। ४८ बजे।
द्वितीया ,, ३।६ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ८। ४ बजेतक	७ ,,	**मूल** प्रातः ८। ४ बजेतक।
तृतीया ,, ३।३ बजेतक	सोम	भरणी दिनमें ८।४९ बजेतक	८ ,,	**मत्स्यावतार, गणगौर, भद्रा** रात्रिमें २। ४७ बजेसे, **वृषराशि** दिनमें २। ५३ बजेसे।
चतुर्थी ,, २।३० बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, ९। ४ बजेतक	९ ,,	**भद्रा दिनमें** २। ३० बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १। ३० बजेतक	बुध	रोहिणी ,, ८। ४९ बजेतक	१० ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ८। ३० बजेसे।
षष्ठी ,, १२। ३ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, ८। १० बजेतक	११ ,,	**श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, १०। १७ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा प्रातः ६। ० बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। १७ बजेसे रात्रिमें ९। १७ बजेतक।
अष्टमी ,, ८। १६ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, ५। ५६ बजेतक	१३ ,,	**श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीदुर्गानवमीव्रत, मूल** रात्रिशेष ४। २७ बजेसे।
नवमी प्रातः ६।० बजेतक	रवि	आश्लेषा रात्रिमें २।५० बजेतक	१४ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें २। ५० बजेसे, **मेष-संक्रान्ति** दिनमें ४। १५ बजे।
एकादशी रात्रिमें १।९ बजेतक	सोम	मघा ,, १। ९ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें २। २२ बजेसे रात्रिमें १। ९ बजेतक, **कामदा एकादशीव्रत** (सबका), **मूल** रात्रिमें १। ९ बजेतक।
द्वादशी ,, १०। ४६ बजेतक	मंगल	पू०फा० ,, ११। ३१ बजेतक	१६ ,,	**कन्याराशि** रात्रिशेष ५। ८ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८। २८ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, ९। ५९ बजेतक	१७ ,,	**प्रदोषव्रत, श्रीमहावीर-जयन्ती।**
चतुर्दशी सायं ६।२१ बजेतक	गुरु	हस्त ,, ८। ३९ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** सायं ६। २१ बजेसे रात्रिशेष ५। २६ बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा दिनमें ४।३१ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, ७। ३७ बजेतक	१९ ,,	**तुलाराशि** दिनमें ८। ८ बजेसे, **पूर्णिमा, श्रीहनुमज्जयन्ती, वैशाखस्नान प्रारम्भ।**

कृपानुभूति

(१)

श्रीराधारमणबिहारीजीके कृपाकटाक्षकी दिव्य अनुभूति

श्रीराधामाधवकी प्रत्यक्ष अनुकम्पाको प्रकट करनेवाली २०१५ की एक विलक्षण घटना मथुराके निकट लगभग १५ कि०मी० दूर 'महावन' कस्बेकी है। जिसे 'प्राचीन गोकुल'के नामसे भी जाना जाता है। भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके बाद वसुदेवजी यमुना पारकर यहीं लाये थे। इसके सामने ही कोयला गाँव है, जहाँ वसुदेवजीने 'कोई लेऊ, कोई लेऊ,' ऐसा कहा था। इसीलिये इसका नाम कोयला पड़ गया; ऐसी अनुश्रुति है।

इसी महावन कस्बेके लिये; जो कि अपना ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक महत्त्व रखता है एवं जो व्रजभूमिके बारह वनोंमेंसे एक है, कहा गया है—

वनानि द्वादशान्याहुर्यामुनोत्तरदक्षिणे।
महावनं महाश्रेष्ठं कामं काम्यवनं तथा॥

(पद्मपुराण)

वृन्दावनसमीपे च मथुरानिकटे शुभे।
श्रीमहावनपार्श्वे च सैकते रमणस्थले॥

(गर्गसंहिता)

इस स्थानकी ऐसी दिव्यताका अवलोकनकर ही शायद आजसे लगभग दो सौ वर्ष पूर्व एक परम वीतरागी तेजस्वी संतका आगमन हुआ। उन्होंने इस स्थानकी पावनता एवं भगवान्‌की क्रीडास्थलीका अनुभव करते हुए यहीं तपस्या करनेका विचार बनाया। वे ऊँचे-ऊँचे रेतके टीलों तथा नागफनीसे घिरे जंगलके बीच छोटी-सी कुटिया बनाकर रहने लगे। भगवद्भक्तिमें लीन रहते हुए उन्होंने बारह वर्ष तक एक मुट्ठी चना खाकर जीवनयापन किया। मनमें एक ही इच्छा थी—श्रीराधारमणबिहारीका साक्षात् दर्शन। ठाकुरजीने इनकी इस व्यवस्थाको किसी वैश्यसे स्वप्नमें कहा, तब वह इनके पास आया और चनेकी व्यवस्था की। आप दिनमें एक बार ठाकुरजीका भोग लगाकर ही चना ग्रहण करते और जल पीकर निरन्तर जपमें लगे रहते। उन्हें यह विश्वास था कि ठाकुरजी अवश्य दर्शन देंगे। एक दिन सन्त कुटिया बन्द करके भजन कर रहे थे, तभी आवाज आयी—'दरवाजा खोलो'। आपने समझा कि कोई ग्वाला होगा। जब तीन बार यही स्वर सुनाई दिया तब आप बोले, कौन है? आवाज आयी—'जिसका तुम भजन कर रहे हो।' तब सन्तने कहा—'भगवन्! यदि आप वही हैं, तब आपके लिये तो सब द्वार खुले ही हैं।' ऐसा कहते ही द्वार स्वतः खुल गया और श्रीवृषभानुनन्दिनीके साथ श्रीकृष्ण प्रकट हो गये।

उन सन्तका नाम था स्वामी ज्ञानदास। आज भी उनका महावनमें रमणरेतीधामके नामसे कार्ष्णि उदासीन आश्रम स्थापित है। कालान्तरमें स्वामी ज्ञानदासके अन्तरंग शिष्योंको भी उस भगवद्रूपके दर्शनकी इच्छा हुई। तब आप कुछ महात्माओंके साथ जयपुर गये किंतु कोई मूर्ति समझमें नहीं आयी, तब मूर्तिकारने कहा कि हम आपको मोम दे देते हैं, आप बनाकर दे दीजिये। स्वामी ज्ञानदासजीने ऐसा ही किया। ठाकुर श्रीराधारमणविहारीलालजीकी मूर्ति बन गयी। उसकी प्राणप्रतिष्ठा इसी आश्रममें हुई, जो आज भी दर्शकोंको बलात् अपनी ओर आकर्षित करती है। इसी विग्रहसे सम्बन्धित घटना यहाँ प्रस्तुत है—

वर्ष २०१५ में इस आश्रममें सहस्रचण्डी महायज्ञ हुआ। उसमें आयोजकोंके परिवारीजन भी सम्मिलित थे। उसी परिवारकी एक माँ और उसकी नौ सालकी बेटी भी प्रारम्भसे समापन तक उपस्थित रही। नित्य दुर्गासप्तशतीका पाठ और सायंकाल हवन होता था। इसके अतिरिक्त ठाकुर श्रीराधारमणविहारीलालजीकी मंगला, शृंगार, भोग आरती एवं शयनदर्शन भी होते। माँ, बेटी दोनों नियमसे यह सब करती थीं। बेटी छोटी थी फिर भी उसे ठाकुरके प्रति अत्यन्त अनुराग हो गया। कार्यक्रमके समापनके उपरान्त घर जाकर भी उसके हृदयसे श्रीरमणबिहारीकी छवि दूर नहीं हुई। किसी-न-किसी रूप उन्हें याद करना उसकी दिनचर्या बन गयी।

एक महीने बाद वही लड़की स्कूलसे घर आते समय अचानक बेहोश हो गयी। मुँहसे झाग आने लगा। किसीको कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि अचानक यह क्या

हुआ। घरवाले सबकुछ श्रीराधारमणविहारीजीपर छोड़ डॉक्टरके पास ले गये। डॉक्टर कुछ भी नहीं समझ पाया कि बीमारी क्या है। उसने लड़कीको दिल्ली ले जानेकी सलाह दी। लड़कीको दिल्ली ले जाया गया। दो तीन जगह दिखाया गया परंतु कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला। लड़की होशमें तो आ गयी पर सामान्य स्थितिमें नहीं थी। दिल्लीकी एक अच्छी महिला डॉक्टरकी सलाहपर १२ घण्टे मस्तिष्ककी स्क्रीनिंग हुई। उसकी रिपोर्ट देखकर डॉक्टर स्वयं अचम्भेमें पड़ गयी कि मैं इसका क्या इलाज करूँ, कोई बीमारी तो है ही नहीं। मैं वहाँ स्वयं उपस्थित था। डॉक्टरसे कुछ मार्गनिर्देशन लेकर सब अपने घर आ गये।

बीमारी कोई है नहीं, लड़की स्वस्थ भी नहीं है, तब क्या किया जाय। मैंने उनके मनकी तसल्लीके लिये अपने परिचित होम्योपैथीके डॉक्टरसे दवा प्रारम्भ करा दी।

लड़कीकी माँको अब एक प्रेरणा हुई कि क्यों न बेटीको रमणबिहारीकी याद दिलायी जाय। इस घटनाके बाद जो हुआ, वह विस्मयकारक है। लड़कीको रमणविहारीकी स्मृति दिलाते ही अद्भुत घटना हुई। जो लड़की कुछ भी नहीं समझ रही थी, वह रमणविहारीजीका नाम लेते ही सचेत हो गयी। माँने कहा—'बेटा तू, ठाकुरजीको याद कर, वे ही तुझे ठीक करेंगे।' जब भी लड़कीको कोई कष्ट होता तो वह श्रीराधारमणजीका स्मरण करती और उसे आराम मिलने लगता।

स्थिति यहाँ तक हो गयी कि ठाकुरजी लड़कीके याद करनेपर उसकी परिचर्यामें उपस्थित रहने लगे। इसका अनुभव देखनेवालोंने भी किया। रात्रिको लड़की जब सोती तो वह इस तरह सोती जैसे उसकी बगलमें कोई लेटा है। एक बार लड़कीके सिरमें तीव्र खुजली मची, जो बहुत प्रयासोंके बाद भी ठीक नहीं हुई। तब माँका ध्यान आया कि ठाकुरजीको क्यों न कहा जाय। माँने कहा—'बेटा! अपने ठाकुरजीसे कह, वे ही तेरी खुजली ठीक करेंगे।' इतना कहना था कि लड़की खुश हो गयी। कुछ देर बाद बोली—'बड़े सुन्दर लग रहे हो।' तब माँने पूछा—'किससे कह रही है।' लड़की बोली—'ठाकुरजीने मेरा सिर खुजलाया है, अब मेरी खुजली ठीक हो गयी।'

लड़कीको प्रायः बीमारीके कारण नींद नहीं आती थी। माँ बड़ी परेशान रहती कि क्या करूँ, कैसे इसे नींद आये। उसे एक युक्ति सूझी कि आश्रममें शयनदर्शनके समय ठाकुर श्रीराधारमणबिहारीलालजीको सुलानेके समय जो पद गाया जाता है, वह गाकर सुनाऊँ, शायद नींद आ जाय। यहाँ हम उस पदका उल्लेख कर रहे हैं—

नैनोंमें नींद भर आयी रमणबिहारीजीके॥
कौन बिहारीजीको दूध पिलावे, कौन खवावे मलाई।
रमणबिहारीजीके॥
सखियाँ बिहारीजीको दूध पिलावें, श्रीराधे जू खवावें मलाई।
रमणबिहारीजीके॥
कौन बिहारीजीकी सेज बिछावे कौन करे गुणगाई।
रमणबिहारीजीके॥
सखियाँ बिहारीजीकी सेज बिछावें श्रीराधेजू करें गुणगाई।
रमणबिहारीजीके॥
'चन्द्रसखी' भज बालकृष्णछवि, चरणकमल सिर नाई।
रमणबिहारीजीके॥

इस पदको पूरा सुनाते ही लड़कीको गहरी नींद आ जाती। ठाकुर श्रीराधारमणबिहारीजीकी कृपासे कुछ समय उपरान्त लड़की पूर्ण स्वस्थ और सामान्य हो गयी। **—कार्ष्णि डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल**

(२)

गोवर्धन-परिक्रमाक्षेत्रमें प्रभु श्रीकृष्णकी उपस्थिति

बात सन् १९७९ ई० की है। मेरे नानाजी जो कि लगभग ७२ वर्षके थे, मथुरामें मंडी रामदासमें स्थित अपने औषधालयमें बैठे गीताका '**नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति**' श्लोक समझा रहे थे कि दो २७-२८ वर्षके युवक आये और बोले—डॉक्टर साहब! राम-राम! नानाजीने आशीर्वाद देते हुए कहा—'लाला! कहीं कू जाय रहे हो?' हाँ, डॉक्टर साहब, गोरधनकी परकम्मा कू जाय रहे, सोची डॉक्टर साहबसे मिलते भये निकलेंगे। नानाजी बोले—'बड़ी किरपा करी बेटा! मेरे सवा रुपया दानघाटीमन्दिरमें चढ़ाये दियो।' और बोले—'लाला, नेक धीरे-धीरे चलो तो मैं भी चल पड़ूँ।' युवक तुरन्त बोले—'नाय-नाय डॉक्टर साहब, गोरधनकी परकम्मा लम्बी हते, डोकरा-डोकरीके बसकी नाय, आप यहीं भजन करो, हमें क्षमा करो।' और कुछ कहा जाय,

वे इससे पहले ही चल दिये।

मैं अपने नानाजीको डोकरा—बूढ़ा कहे जानेसे गुस्सेमें था। साथ ही, अपने ज्ञानी नानाजीको मूरख युवकोंके लिये हाथ जोड़नेसे दुखी भी था। मैंने नानाजीसे कहा—'गोवर्धनकी परिक्रमामें ऐसा क्या है, जो आप इन युवकोंके आगे गिड़गिड़ा रहे थे?' वे बोले—'बेटा, सात वर्षकी आयु से अपने दादाके साथ परिक्रमा प्रारम्भ की थी, अब शरीर शिथिल हो गया है, वरना हर पूर्णिमापर गोवर्धन-परिक्रमा लगाता था।' मैं आपको ले चलता हूँ, मैंने जोशसे कहा। मेरा इतना कहना था कि नानाजीने दवाखाना बन्द कर दिया और अपनी छड़ी उठाकर चलनेके लिये तत्पर हो गये। यह उत्साह देख मैं चकित था।

हमलोग बसद्वारा गोवर्धन पहुँच गये। नानाजीने मानसी गंगामें स्नानकर सन्ध्या की एवं राधा-कृष्णके प्रेमके निमित्त परिक्रमाका संकल्प लिया। मुझे भी कराया और परिक्रमा प्रारम्भ की। मैं अपनी जिज्ञासाके कारण प्रश्न-पर-प्रश्न झोंके जा रहा था। अचानक नानाजीने क्रोध करते हुए कहा—'मूरख लड़के! तुझे परिक्रमा लगानेकी अक्ल नहीं है।' मैं भी गुस्सेसे बोला, 'जैसे सब चलते हैं, वैसे मैं भी चल रहा हूँ।'

बोले—'चलना तो शरीरका तप है, मनका क्या कर रहे हो? बकवाससे मन तो कोरा रह जायगा।' 'क्या करूँ?'—मैंने कहा। 'तो तुम्हें परिक्रमा करनेका सही तरीका नहीं मालूम' वे बोले। मैंने कहा 'आपने कभी बताया।' वे गुस्सेसे बोले—'मुझसे भूल हुई' कहकर उन्होंने एक कागज मुझे दिया।

'श्रीराधाकृष्ण के गह चरण, श्रीगिरिवरधरण की ले शरण।'

बहुत पुराने कागजपर यह पंक्ति लिखी थी। नानाजीने बताया यह लिखायी उनके दादाजीकी है और बोले—'इस मन्त्रका जप करते रहो, कभी प्रभुकी कृपा हो गयी तो तर जाओगे।' मैं फिर बोला—'आपपर हुई है क्या?' नानाजीने कहा—'ये बातें बतायी नहीं जातीं।' मैंने कहा—'आप भी नहीं बतायेंगे तो कौन बतायेंगे?' 'विचार करूँगा' नानाजीने कहा—अब तुम जप के साथ परिक्रमा करो।

हम धीरे-धीरे आनौरकी ओर पहुँचे। नानाजी एक मन्दिरके बाहर विश्रामके लिये बैठ गये।

थोड़ी देर विश्रामके बाद नानाजी बोले—७० वर्षसे अधिकका हो गया हूँ। लगभग दस वर्ष और शरीर चलेगा, अत: तुम्हें एक गोपनीय घटना बताता हूँ, ताकि हमारे वंशमें विश्वास रहे। ध्यानपूर्वक हृदयमें धारण करो। आजसे तीस वर्ष पूर्व यहाँसे थोड़ा आगे हलका वन था और कच्चा रास्ता था। बरसातमें यहाँ पानी और दलदल हो जाता था। एक पूर्णमासीको मैं परिक्रमा करने आया तो गाँवके लोग बोले—मौसम खराब है और आनौरके आगे दलदल है, परिक्रमा सुबह लगा लो, पर मैं दूकान बन्द करनेसे बचनेके लिये रात्रिमें ही परिक्रमा प्रारम्भ कर बैठा। कुछ ही देरमें बादल हो गये और पूर्णिमाका चन्द्रमा छुप गया। अन्धकार हो गया। मैं फिर भी दृढ़ निश्चयके साथ चलता रहा। मनमें एक अलग ही आनन्द था, दूरतक मेरे अलावा कोई नहीं था।

धीरे-धीरे भूमि नरम होने लगी। मैंने अपने अनुभवसे मार्ग थोड़ा बदला। धीरे-धीरे पानी घुटनोंतक हो गया। मैंने अगला कदम रखा तो पूरा अन्दर चला गया। पीछे आनेकी कोशिश की तो पैर कीचड़से नहीं निकल रहा था। कुछ समझूँ, तबतक कमरसे नीचेका भाग डूब चुका था। शेष भी धीरे-धीरे अन्दर जा रहा था। मैंने एक हाथ पानीमें डाला तो वह भी फँस गया। अब मैं समझ गया कि लोग ठीक कह रहे थे। अन्तिम समय नजदीक जानकर मैं जोर-जोरसे ***'श्रीराधाकृष्ण के गह चरण, श्रीगिरिवरधरण की ले शरण'*** का जप करने लगा। बीच-बीचमें 'हे गोपाल, हे वंशीलाल, अपने चरणोंमें स्थान देना' का आर्तनाद भी कर रहा था।

अचानक वहाँ एक बालकण्ठकी आवाज आयी—'को है' (कौन है?) मैं तत्काल जोरसे चिल्लाया—'बेटा! मैं एक परिक्रमाका यात्री हूँ, कल कोई पूछे तो बताना कि डॉक्टर साहब दलदलमें लीन है गयै। लाला तेरी बड़ी कृपा होगी, नहीं तो परिवारवाले परेशान होंगे।' अरे! अभी तो तोये बहुत डाक्टरी करनी है, लै मेरी लकुटिया पकड़ और बाहर निकल—बालक बोला। 'नाय-नाय लाला, मेरे बोझसे अगर तू भी दलदलमें फँस गयो तो मोकूँ बड़ो ही पाप लगैगो, तूने अभी पूरी जिन्दगी बितानी हतै है।' मैंने अपना ज्ञान दिखाया—नानाजी बोले।

मेरी चिन्ता छोड़ लकुटिया पकड़, मोये देर है रही

है, मय्या मारेगी—बच्चेकी आवाजमें कुछ था। उसकी लाठी पकड़ी, और मैं एक तिनकेकी तरह बाहर आ गया।

'लाला इतनी रातमें बाहर नाय निकलैं, खतरा रेवै', नानाजी बालकको समझा रहे थे—'तेरी मय्या तोहे लाडमें ये बाँसुरी और मोरपंखी लगाय दई है, पर यासे कोई कृष्ण थोड़े ही बन जाय है, चल मैं तोकूँ तेरे घर पहुँचा आऊँ।' मेरी चिन्ता छोड़, तोकूँ या दगरे (मार्ग) से पार कराय दूँ फिर जाऊँगा—बालक बोला। 'अरे! तू तो बड़ा ही हठी बालक है, का करै है?' यहीं गोवर्धन पर्वतमें डोलूँ और गय्या चराऊँ, कभी तेरे-से मूरखनकी मदद करूँ—बालकने हँसते-हँसते कहा। लाला! तेरी मय्या बड़ी भागवान है, जो कलयुगमें ऐसो बेटा पाया है। तेरे परिवारमें गिर्राज बाबाकी बड़ी कृपा है। नानाजीने आशीष दी। बाबरे तो पे कृपा नाय का? बालक बोला। लाला हमारी किस्मत कहाँ? अब देख परिक्रमा-जैसे शुभ काममें दलदलमें फँस गयो हतो, नानाजी चलते-चलते बोले। अब ठीक मारग आय गयो है। अपना जप कर और परकम्मा लगा, मैं चला—बालककी आवाज आयी। ठीक है बेटा, सुखी रह और अपनी मय्या कू मेरी राम-राम कहियो, कहते-कहते नानाजी बालककी ओर पीछे मुड़े, वे चकित थे। मार्ग सुनसान था। अब नानाजीका विवेक जाग्रत् हुआ, स्वयं प्रभु आये थे। फिरसे पुकारा काफी समय उस स्थानपर बैठकर जप किया, रजमें लोट लगायी, अपनी मूर्खतापर रोये अपने भाग्यपर हँसे, ऐसा नानाजीने बताया। पर नानाजी भगवान्‌ने आपको इतने संकेत दिये, फिर भी आप नहीं समझे—मैंने पूछा। नानाजीने बताया, प्रभुके सामने बुद्धि साथ नहीं देती।

अगर मेरा अनुभव भी आप-जैसा हो गया तो मैं तो यहीं घर बना लूँगा—मैंने कहा। नानाजी बोले—बेटे! जब मन निर्मल होगा तो कुछ नहीं करना होगा, आओ, अब मौन होकर परिक्रमा पूर्ण करें।—**श्रीराकेश कुमारजी**

श्रीराधा-अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

अथास्याः सम्प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम्। यस्य सङ्कीर्तनादेव श्रीकृष्णं वशयेद् ध्रुवम्॥ १ ॥
राधिका सुन्दरी गोपी कृष्णसङ्गमकारिणी। चञ्चलाक्षी कुरङ्गाक्षी गान्धर्वी वृषभानुजा॥ २ ॥
वीणापाणिः स्मितमुखी रक्ताशोकलतालया। गोवर्धनचरी गोप्या गोपीवेषमनोहरा॥ ३ ॥
चन्द्रावलीसपत्नी च दर्पणास्या कलावती। कृपावती सुप्रतीका तरुणी हृदयङ्गमा॥ ४ ॥
कृष्णप्रिया कृष्णसखी विपरीतरतिप्रिया। प्रवीणा सुरतप्रीता चन्द्रास्या चारुविग्रहा॥ ५ ॥
केकराक्षी हरेः कान्ता महालक्ष्मी सुकेलिनी। सङ्केतवटसंस्थाना कमनीया च कामिनी॥ ६ ॥
वृषभानुसुता राधा किशोरी ललिता लता। विद्युद्वल्ली काञ्चनाभा कुमारी मुग्धवेशिनी॥ ७ ॥
केशिनी केशवसखी नवनीतैकविक्रया। षोडशाब्दा कलापूर्णा जारिणी जारसङ्गिनी॥ ८ ॥
हर्षिणी वर्षिणी वीरा धीरा धारा धरा धृतिः। यौवनस्था वनस्था च मधुरा मधुराकृतिः॥ ९ ॥
वृषभानुपुरावासा मानलीलाविशारदा। दानलीला दानदात्री दण्डहस्ता भ्रुवोन्नता॥ १० ॥
सुस्तनी मधुरास्या च बिम्बोष्ठी पञ्चमस्वरा। सङ्गीतकुशला सेव्या कृष्णवश्यत्वकारिणी॥ ११ ॥
तारिणी हारिणी ह्रीला शीला लीला ललामिका। गोपाली दधिविक्रेत्री प्रौढा मुग्धा च मध्यका॥ १२ ॥
स्वाधीनपतिका चोक्ता खण्डिता याभिसारिका। रसिका रसिनी रस्या रसशास्त्रैकशेवधिः॥ १३ ॥
पालिका लालिका लज्जा लालसा ललनामणिः। बहुरूपा सुरूपा च सुप्रसन्ना महामतिः॥ १४ ॥
मरालगमना मत्ता मन्त्रिणी मन्त्रनायिका। मन्त्रराजैकसंसेव्या मन्त्रराजैकसिद्धिदा॥ १५ ॥
अष्टादशाक्षरफला अष्टाक्षरनिषेविता। इत्येतद्राधिकादेव्या नाम्नामष्टोत्तरं शतम्॥ १६ ॥
कीर्तयेत्प्रातरुत्थाय कृष्णवश्यत्वसिद्धये। एकैकनामोच्चारेण वशीभवति केशवः॥ १७ ॥

॥ इत्यूर्ध्वाम्नाये श्रीराधाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥